आनन्दामृतवर्षिणी ।

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक स्वामी आनन्दगिरिकृत ।

जिसमें

अतिसुगम अतिपवित्र अतिगुप्त सब विद्याधर्मोंमें श्रेष्ठ प्रत्यक्षफलानुभविक ब्रह्मतत्त्व वर्णित है ।

जिसे

ब्रह्मनिष्ठोंके उपकारार्थ

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

मार्गशीर्ष संवत् १९६९, शके १८३०.

॥ श्रीः ॥

आनन्दामृतवर्षिणीकी-

अनुक्रमणिका ।

द्वितीय अध्यायका संक्षेप ।

कनिष्ठ भेद करके जीवन्मुक्तका लक्षण विदेह मुक्तिका लक्षण ज्ञान उपरति वैराग्य का हेतु आदि चार चार भेद करके फलके सहित लक्षण ज्ञानी ब्रह्मवित् का ब्रह्मविदादि भेद करके चार प्रकारका लक्षण है। प्रथम मुक्ति आदिका लक्षण लिखकर फिर ज्ञानकी सात भूमिका लिखकर फिर श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक और अनेक दृष्टान्त युक्ति शंका समाधन पूर्वक इस बात कूं सिद्ध किया है जो कनिष्ठ जीवन्मुक्त किसी हेतु से संपादन न होसके तो विदेह मुक्ति में सन्देह नहीं ॥

चौथे अध्याय का ७१ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ ८२ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें अन्तरंग बहिरंग भेद करके बहुत ज्ञानके साधन लिखे हैं ॥

पांचवें अध्यायका ८३ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ ९१ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण का लक्षण और यज्ञ तप सुखदान कर्मादिका सत्त्वादि भेदकरके तीन तीनप्रकार का भेद फलके सहित लिखाहै ॥

छठे अध्यायका ९१ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ १०२ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त आदिसे प्रमाणपूर्वक इस बातकूं सिद्ध किया है कि मुक्तिका साधन मुख्य ज्ञान है कर्मादि परम्परा करके गौण हैं और

जीव ब्रह्मकी एकता पूर्णतादि में बहुत वादी की शंकाहैं सबका श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक समाधान किया है ॥

सातवें अध्याय का १०२ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ ११४ के पृष्ठमें समाप्त हुआ । उसमें जीवात्मा परमात्मा का लक्षण और जीव ब्रह्मकी ऐक्यता और ऐक्यता पूर्णता नित्यमुक्तादि सिद्धिमें बहुत दृष्टान्त हैं और जो जो वादीने शंका करी सबका श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक समाधान किया ॥

आठवें अध्याय का ११४ के पृष्ठमें प्रारंभ हुआ १२२ के पृष्ठमें समाप्त हुआ । उसमें 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अभ्यास करनेके साधन लिखे हैं और मुख्य तात्पर्य वेद शास्त्रों का किस मतमें है और क्या है और श्रुतियों का अविरोध और यो सब जो हम कहते हैं इसका भलेप्रकार शारीरक भाष्यमें निश्चय होसक्ताहै यो प्रसंग है और कर्म उपासनादि में जो मुख्य मुक्तिके साधन हैं उनका निश्चय और वेदान्त शास्त्रके मतसे मुक्ति संसार परमेश्वर जीवका जो लक्षण उसकूं दृष्टान्त इतिहास युक्ति श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक सिद्ध किया है और संसार मुक्ति परमेश्वर जीवका नैया, यक, सांख्य, पूर्वमीमांसा शास्त्रवाले औरभी बौद्धादि जैसा जैसा कहते हैं उनका मत भी किंचित् संक्षेप करके लिखा है ॥

नवें अध्यायका १३४ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ १४१ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें अज्ञान का लक्षण और अज्ञान का कारण जो आसुरी सम्पत् के अवगुण उनका वर्णन और काम क्रोधादि कूं ज्ञानकी सिद्धिके लिये और पीछे ज्ञानके जीवन्मुक्ति की सिद्धिके लिये त्यागना चाहिये इस बातमें गुरु शिष्यका सम्वाद है ॥

दशवें अध्यायका १४१ पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ १६० के पृष्ठमें समाप्त हुआ । उसमें जीवन्मुक्तिके पांच प्रयोजन और अन्तष्करणके निरोध का प्रकार और जीवन्मुक्ति के साधन लिखेहैं । फिर श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजकी कृपासे आनन्दामृतवर्षिणी समाप्तहै ॥

इत्यनुक्रमणिका ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

आनन्दाऽमृतवर्षिणी ।

मूल ।

श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप जो इन्दिरेश्वर ।

टी०—श्री लक्ष्मी और शोभा और माया कूं कहते हैं तीनों करके अर्थ लगताहै सच्चिदानन्द लक्ष्मीपति शोभावान् मायाके स्वामी माया करके युक्त परंतु विशेष यांहै सच्चिदानन्द मायाके स्वामी सच्चिदानन्दमें तीन पद हैं सत चित् आनन्द अब यां देखना चाहिये तीन पद क्यों कहे इसका यां कारणहै जो केवल सत कहते तो न्यायशास्त्रवाले आकाशकूंभी सत् कहते हैं सो वह जड है इसलिये चित भी कहा वह दुःखरूप वा आनन्द रूप है इसलिये आनन्द भी कहा और सत्ता दो प्रकारकी है व्यावहारिकी परमार्थिकी व्यावहारिक सत्ता वहहै जो देहादिमें है और परमार्थिकी सत्ता जो सच्चिदानन्द ब्रह्ममें है इस जगह पारमार्थिकी सत्तासे प्रयोजनहै इसी प्रकार चैतन्यता आनन्दता भी व्यावहारिकी पारमार्थिकी भेदसे दो प्रकारकी है ॥

मू०—इन्दीवर इन्द्र मणी की सदृस जो सुन्दर रमा करके लालितहैं पादपंकज जिन्हों के ऐसे जो ॥

टी०—इन्दीवर इन्द्रमणी दो विशेषण देनेका यह प्रयोजन है भक्तोंके लिये तो इन्दीवरकी सदृश कोमल और दुष्टोंके लिये इन्द्रमणीकी सदृश कठिन है ॥

मू०—रामेश्वर और बन्दीकियेहैं इन्द्रके रिपुओंके वृन्द जिन्होंने ऐसे जो सुरेश्वर और आनन्द है वीर्य्य जिन्हों-का ऐसे जो परमेश्वर और मन्द मुसुकान करके आनन्द-कियेहैं लोकोंकेवृन्द जिन्होंने ऐसे जो नन्दजीके नन्दन और आतमरूप करके चिंतवन करतेहै जिन्होंकूं सनत्कु-मार, सनातन, सनक, सनन्दन और चंद्रवंशमें भक्तोंके लिये अवतारहै जिन्होंका ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेव-जीके नन्दन उन्होंको मैं वन्दन करताहूं हे अमरवर आ-पके गुणोंके अन्तका नहीं जाननेवाला ॥

टी०—परमेश्वरके गुण दो प्रकारके हैं प्रथममें दो भेद ह ऐसे जैसे अज अव्यक्त अद्वैत अमरादि जो निषेधकर के कहेजाते हैं दूसरे सत् चित आनन्दादि जो प्रतिपादन करके कहेजाते हैं और दूसरे राम कृष्णादि सगुण ब्रह्मके गुण श्याम शान्ताकार करुणाकर भक्तवत्सलादि ॥

मू०—जो नर उसकी स्तुति जो आपके सदृश न हो तो क्या आश्चर्य है क्योंकि ब्रह्मादिकी भी स्तुति आपके सदृश नहीं है और जो यों कहो यथामति स्तुति करने-वाले सब निर्दोष हैं तो हे दीनार्तिहर ! मेरा जो इस आन-न्दाऽमृतवर्षिणीके लिखनेमें परिकर सोभी निर्दोष है हे भगवन् ! आपकी महिमा मन वाणीका तो विषय नहींहै और वेदभी अतद्व्यावृत्ति करके चकित हुए आप-की महिमा कूं कहते हैं सो ॥

टी०—अतद्व्यावृत्तिका अर्थ यों है कहेकूं आवृत्तिविशेष कहे कूं व्यावृत्ति औ अततके वारम्वार कहेकूं अतद्व्यावृत्ति-कहतेहैं अततका अर्थ योंहै नहीं है तत सो नहींहै तत ब्रह्मकूं कहते हैं तात्पर्य्य यों है श्रुतिने कहकह कर जो निषेध कियाहै सो नहीं है इसीकूं अतद्व्यावृत्ति कहते हैं शास्त्रकी रीतिसे अततका अतद् बोला जाता है ॥

मू०—महिमा किसके स्तुति करने योग्य है और आपके कितने गुणहैं यों कौन कहसके फिर आप किसका विषय हो सक्ते हैं परन्तु अर्वाचीन पदके अर्थात् अवर पदके ॥

टी०—जिस करके जानाजावे उसको पद कहते हैं ब्रह्मके दो पद हैं एक अवर अर्थात् उरला सगुण दूसरा पर अर्थात् परला निर्गुण ॥

मू०—विषयमें किसका मन नहीं लगताहै और किसकी वाणी यों नहीं चाहतीहै कि परमेश्वरका कीर्तन करना चाहिये परन्तु विना आत्महत्यारेके संसारमें तीन प्रकारके पुरुषहैं मुक्त १ मुक्तिकी इच्छा वाले २ विषयी ३ मुक्त तो शुक सनकादि ज्ञानी जन सदा आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं मुक्तजन ब्रह्मानन्दकूं अनुभव करते हुए स्मरण करते हैं कि यों ब्रह्मानन्द परमेश्वरकी कृपाहै और मुक्तिकी इच्छावालोंकूं संसाररूप रोगकी योंही परमेश्वरका कीर्तन करना परम औषधि है २ और विषयी जनोंकूं आपके चरित्र विहारादि परमप्रिय लगतेहैं हे भक्तप्रिय! बृहस्पति आदिकी जो स्तुति क्या आप कूं

आश्चर्य्यहै तात्पर्य्य कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि समस्त परम अमृतरूप मधुर कोमल २ वाणी सब आपही-की कहानीहैं और जो यों कही फिर तुम्हारी वाणी क्या आश्चर्य होगी हे परमेश्वर ! मेरी बुद्धिमें तो यों अर्थ निश्चय कियाहै अपनी वाणीकूं आपके गुणोंका कथन करके पवित्र करताहूं प्रार्थना यों है हे कृष्णचन्द्र ! मेरी यों बालककीसी हठ जानकर आपने सर्वप्रकार क्षमा करनी ग्रन्थके आदि मध्य अन्तमें निर्विघ्न समाप्तिके लिये और आस्तिकमार्ग प्रवृत्तिके लिये शिष्टाचारानुमित और श्रुति-बोधित जो तीन प्रकारका मंगल नमस्कार आशीर्वाद वस्तुनिर्देश होताहै सो यहांतक मंगलाचरण है ॥

विद्वान्‌जनोंसे प्रार्थना यों है जो यो मेरी भाषामें लिखाहै जो श्रुति स्मृति वेदान्तशास्त्रसे विरुद्ध हो तो अंगीकार नहीं करना और जो किसी जगह प्रकरणसंगति पुनरुक्ति आदि दोष प्रतीत होतेहों तो बनादेने और जो यों भाषा अच्छी न होवे और तात्पर्य्य वक्ताका भलेप्रकार न प्रतीत होता हो तो जैसी विद्वान् पसन्द करें वैसीही लिखदेनी और परमेश्वरके स्वरूपका जो इसके विचारमें चिंतवन करनेमें आता है इस गुण करके अंगीकार करना योग्यहै कुछ वाणीकी चतुराई तो इसमें है नहीं और जो कहीं बुद्धिके भ्रमसे अन्यथा लिखागया हो

इसको बना देना तात्पर्य्य सबप्रकार आपकोही क्षमा करनी योग्यहै मेरे अभिप्रायकूं विचारना चाहिये वक्ताका इसके लिखनेमें क्या अभिप्राय है सो सुनो मैंही लिखे-देताहूं श्रीकृष्णचन्द्रने गीताशास्त्रमें कहाहै इस गीता शास्त्रकूं जो मेरे भक्तोंकूं धारण करावेगा तो मेरे विषय परमभक्ति करके मुझकूं प्राप्त होवेगा और स्वामी विद्या-रण्यभारतीतीर्थजीने पञ्चदशीमें कहा है किसी उपाय करके ब्रह्मका सदा चिन्तवन करना जो एकान्तमें बैठ-ना तो ब्रह्मही का चिन्तवन करना और जो दूसरेसे पर-स्पर बात करनी तो ब्रह्महीकी करनी और जो किसीकूँ कथन करना तो ब्रह्महीका करना यों जो एकपर होनाहै इसीकूं विद्वान् ब्रह्माऽभ्यास कहतेहैं सो मुझकूं जो उपाय ब्रह्मके चिन्तवन करनेका अच्छा प्रतीत होताहै ॥

पञ्चदशी वेदान्तसार तत्त्वानुसन्धान श्रीभग-वद्गीता टीका सहित और आत्मबोधादि पोथी समीप रखकर जितनी मेरी बुद्धि थी उन्होंकूं विचार जो सीधा खुलासा अर्थ बालकों की समझमें आवे ओ अर्थ आन-न्दामृतवर्षिणीमें लिखाहै बुद्धिमानसे इस आनन्दामृतव-र्षिणी कूं एक वेर श्रद्धा भक्ति करके और चित्तकूं एकाग्र करके कुतर्कके विना सद्गुरुसे जैसे गुरु देवकी गीतामें लिखे हैं तात्पर्य वेदशास्त्रके तात्पर्य्यकूं जाननेवाले और ब्रह्मनिष्ठ उन्होंसे सुनना योग्य है जो केवल वेद शास्त्रार्थकें

जाननेवाले हैं और ब्रह्मनिष्ठ नहीं वे विज्ञान अनुभव नहीं कहसकेंगे और जो केवल ब्रह्मनिष्ठ हैं वे युक्ति दृष्टांत शंका समाधानपूर्वक नहीं कहसकेंगे इसलिये वेद शास्त्रार्थके जाननेवाले और ब्रह्मनिष्ठ गुरुओंसे सुनना योग्यहै जो इस में अनुष्ठान कहाहै उसकूं सुननेवालेकी इच्छा हो करो वा मतकरो तात्पर्य्य यह है जो सुनेगा तो अपने आनन्दके लिये आपही अनुष्ठान करेगा दृष्टांत कहते हैं एक राजा था कभी पण्डितों कूं कुछ न देता था न कभी कथा सुनता था किसी विद्वान्ने सब पण्डितोंसे कहा कि तुम राजासे कहो हे राजन्!आप हमारी कथा सुनो धन दो वा न दो पण्डितोंने कहा महाराज वृथा अनधिकारीसे कौन माथा मारे प्रयोजनके विना तो मन्द भी नहीं प्रवृत्त होताहै विद्वान्ने उन्हों कूं दृष्टान्त दिया जो केली गेहकी देहलीमें तरुण स्त्री दूध पी हुई किसी प्रकार प्राप्त हो जावो फिर मैथुनकी इच्छा करो वा मतकरो अब दृष्टांत और दार्ष्टान्त विचारो क्या वो राजा पाषाण है जो पण्डितोंकी कथा सुनकर मुक्ति के लिये धर्म दानादि नहीं करेगा और क्या वो स्त्री पत्थर है कि उसकूं ऐसी जगे अपने आनन्दके लिये कामका आविर्भाव नहीं होगा ऐसेही क्या इस ग्रंथका सुननेवाला पाषाण है जो निरतिशय आनन्दके लिये अनुष्ठान न करेगा

टी०—जिसके सिवाय और किसी जगह ब्रह्मलोकादिमें आनन्द नहीं

मू०—जो अर्थ इस आनन्दामृतवर्षिणीमें लिखना है उसकी संगतिके लिये जहां यों लिखेंगे प्रथम ज्ञानके चार साधन हैं यहां तक उपोद्घात कथाहै सो सुनो ॥

टी०—वाञ्छित अर्थकूं मनमें रखकर प्रथम और प्रसंग कहना ॥

मू०—जो एक चैतन्य महानंद शुद्धब्रह्म नित्यमुक्त सो मायोपहित हुआ ईश्वर १ और वोही चैतन्य समष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित हिरण्यगर्भ २ और वोही चैतन्य समष्टि स्थल उपाधि करके उपहित विराट् ३ इन तीन भावोंकूं प्राप्त होता भया और ओही चैतन्य अविद्योपहित हुआ प्राज्ञ १ और व्यष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित तैजस २ और व्यष्टि स्थूल उपाधि करके उपहित विश्व ३ इन तीन भावोंकूं नाना प्रकार का जीव होता भया फिर ईश्वर जीवोंके धर्म अर्थ काम मोक्षके लिये सृष्टि स्थिति संहारकूं करते भये धर्मादिमें मोक्ष मुख्यहै और तीनि धर्मादि गौणहैं और धर्मादि तीनके दो दो फलहैं मुख्य फल परम्परा करके तीनोंका मोक्षहै और स्वर्गादि गौणहैं धर्मका मुख्य फल मोक्षहै और स्वर्गादि गौणहैं स्वर्गादि फल जो वेदोंमें कहे हैं वे ऐसेहैं जैसे बालककी शोभाके लिये कानछेदन कराना और मोदकादिको फल कथन करदेना अभिप्राय तो उन्होंका जो है सो है श्रुतिमाताके सदृश हित ॥

टी०—परिणाम अन्तम सुखहो जिसके ॥

मू०—चाहने वालीह जैसे किसीका पुत्र रस्तेकी मृत्तिका खाया करता था उसकी माताने उसकूं बहुत बरजा उसने न माना हारकर माताने कहा हे पुत्र ! यों गंगाजीकी मृत्तिका खायाकर बहुत सुन्दरहै विचारो माताका अभिप्राय गंगाजीके मृत्तिकाके खिलानेमें नहीं है रस्तेकी मृत्तिकाके वर्जने में उसका अभिप्राय है ऐसेही जो मूर्ख-जीव रस्तेकी मृत्तिकाकी नाईं शब्दादि विषयोंकूं इष्ट जानताहै श्रुतिने यों समझा इन विषयोंसे तो स्वर्गादि अच्छे हैं तात्पर्य्यतो श्रुतिका मुक्तिमें है इसी हेतुसे मोक्ष मुख्यहै और उपासना इस लिये है किसीका पुत्र जगह जगह वृथा फिरता था समेसिर नहीं हाथ आता था उसके पिताने विचार कर पुत्रसे कहा कि तू इस मकानपर बैठारहाकर कुछ उसकूं लालच देदिया तात्पर्य्य जब काम पडेगा यहांसेबुला-लूंगा वैसेही यों मनकाहीं यज्ञ दानादिके फल स्वर्गादिमें कही शब्दादि विषयोंमें मृगतृष्णावत् भूला भागाभागा फिरता था कभी श्रम नहीं होता था जो आत्मस्वरूपका विचार करे इसी लिये श्रुतिमें एकाग्रचित्तके लिये उपासना कही है विचारदेखो एकाग्रचित्तके विना श्रवण मनन निदिध्यासन ये जो मुख्य साधन मुक्तिके हैं सो नहीं होसक्तेहैं १ इसीप्रकार अर्थजो अशरफी रुपयादि करके जगत्में प्रसिद्ध होना और जगत्के सुख सम्पादन करने गौणहैं और रुपयादि खर्च करके धर्म करना

कथा श्रवण करना सन्तोंका संग करना तीर्थोंका सेवन
करना मुख्यफल उन्होंका भी परम्परा करके मोक्षहै २
ऐसेही काम अपने सुखके लिये खाना पीना और आनन्द-
के लिये स्त्रीका संग और स्थान वस्त्रादिमें जो सुख वह्हि
सो गौण और भोजनादि वास्ते धर्मके और श्रवणादि के
लिये शरीरकी रक्षाकरनी और स्त्रीका संग वास्ते पुत्रकी उ-
त्पत्तिके वोभी किसी अंशमें मुक्तिका हेतुहै इसका भी
परम्परा करके मुख्यफल मोक्ष है ३ तात्पर्य्य संसारमें-
पुरुषार्थ मुख्य मोक्षहै वे जो अविद्योपहित जीव उन्होंमें-
से श्रुति स्मृति जो परमेश्वरकी आज्ञा हैं उन्होंकूं जो क-
रते भये उन्होंकी उपासनाके लिये जैसी उन्होंकूं मूर्त्ति
परमेश्वरकी वांछित हुई वेही मायोपहित ईश्वर, ब्रह्मा, वि-
ष्णु, महेश, सूर्य्य, शक्ति, गणेशादि मूर्त्तिकूं धारण करते
भये सो मूर्त्ति कैलास वैकुण्ठादिमें और भक्तोंके हृदयमें
सदा वास करती रहती हैं वे जो विष्णु भगवान् हैं सो भक्तों
के उद्धारके लिये जो ऐसे भक्तहैं कि सदा जो परमे-
श्वरकी आज्ञा उसकूं करके शुद्ध किया है अन्तःकरण
जिन्होंने और शम दमादि साधनों करके युक्त मोक्षकी
इच्छावाले परन्तु बहुत गंभीर जो ऋग्, यजु, साम, अथ-
र्वण वेद उनके विचारनेमें असमर्थ और विना विचार-
के ज्ञान नहीं होता है जैसे पदार्थका भानु विना प्रकाशके
इसलिये उनकूं ब्रह्मतत्त्व विचारनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र

अवतार लेकर चारों वेदोंका अर्थ जो कि मुख्य मोक्षका साधन है अर्जुनके निमित्त करके गीता शास्त्र रचते भये और वेही विष्णु व्यासदेव अवतार लेकर भागवतादि पुराण भारतादि इतिहास रचते भये जिन्होंमें कर्म उपासना ज्ञान तीनों हैं प्रसंगसे गीताकूंभी महाभारतके बीचमें लिखा और जो वेदान्त वेदोंका सिद्धान्त जिसकूं वेदोंका मस्तक कहते हैं उस सिद्धान्तकूं फिर सूत्रोंमें कथन करते भये तात्पर्य्य कई कई श्रुतियोंका अर्थ एक एक सूत्रम संक्षेप करके कहा वे जो सूत्र और गीता शास्त्र उनका जो अर्थ सोभी बहुत गम्भीर और परमेश्वरका अभिप्राय परमेश्वर जाने या जिसपर उनकी कृपाहो वो जानै पीछे उनके कलियुगके जीवनने हठ करके पण्डिताईके बलसे अपने अपने मतमें व्याससूत्र और गीताजीका अर्थ बनालिया जो अभिप्राय श्रीकृष्णचन्द्र और व्यासदेवजीका था वह सिद्ध न हुआ ज्ञानकाण्ड जो साक्षात् मुक्तिका हेतु था लोप होगया तब सब देवता विष्णु ब्रह्मादि जुरकर श्रीमहादेवजीके पास गये सारी व्यवस्था कही महादेवजीनें कहा हम वेदमार्गकी प्रवृत्तिके लिये अवतार लेंगे आपभी सब ब्रह्मा इन्द्रादि अवतारलो फेर महादेवजी महाराज तो श्रीशंकराचार्य्य नाम करके और विष्णुजी सनन्दन नाम करके और ब्रह्माजी मण्डनमिश्र नाम करके सरस्वतीजीके सहित और इन्द्र सुधन्वा रा-

जा नाम करके तात्पर्य इसी प्रकार बहुत देवता अवतार लेते भये क्योंकि जब ज्ञानकाण्डका लोप होताहै तब महादेवजी अवतार लिया करते हैं और सब मतवालों-से शास्त्रार्थ करके सब झूँठे मतोंका खण्डन करके जो सार सिद्धान्तवेद भगवान्का है उसको स्थापन किया करते हैं राजाका अवतार इसलिये हुआ जो शास्त्रार्थमें झूंठी कु-तर्क और हठ करेगा और शास्त्रार्थ होकर उसका मत खण्डन होजावे फिर दुराग्रहसे न माने अथवा बहुत जुर-कर सामना करें तो राजा उनकूँ दंडदेंगे पीछे अवतारकूँ ५। ६ वर्षकी अवस्थामें श्रीशंकराचार्य्यजीने संन्यास लेकर १६ वर्षकी अवस्थामें १६ भाष्यरचे १० उपनिषद्पर ११ भाष्य व्यास सूत्रोंपर एक शारीरक भाष्य विष्णुसहस्रनामभाष्य गीता सनत सुजात भाष्य नृसिंह-तापिनी भाष्य तात्पर्य्य उपनिषद् गीतादिका अर्थ भले प्रकार श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त प्रमाण देदेकर सिद्ध किया और जो गीता भाष्यादिके विचारनेमें असमर्थ देखे उनके लिये आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरणोंमें वोही अर्थ संक्षेपकर लिखते भये फिर सब वादियोंकूं शास्त्रार्थमें जय करके दिग्विजय करते भये जो वेदोंका सार सिद्धान्त था उसकूं प्रकट प्रचार करते भये ऐसा ऐसा शास्त्रार्थ हुआ चालीस दिनतक मण्डन मिश्रसे चरचा रही मण्डन मिश्रकी स्त्री सरस्वतीजीका अवतार साक्षी थी उसने

पुष्पोंकी माला दोनोंके गलेमें डाल दी थी कहदिया था जिसकी माला सूखेगी वोही हारेगा चालीस दिनके पीछे मण्डनमिश्रकी माला सूखगई इसीप्रकार बहुत जगह शास्त्रार्थ हुआ और चारों दिशोंमें महाराज गये उनके अब-तक ज्योयशी आदि मठ चारोंदिशोंमें विद्यमान हैं और कपाली आदिने जो सामना किया वे कुछ महाराजने मंत्रोंसे मारे कुछ राजाने मारे विस्तार इस कथाका तीन दिग्विजय ग्रंथ हैं उनमें बहुत है तात्पर्य यों है जो अच्छे बुद्धिमान हैं उनके लिये तो शारीरक भाष्यादि बडे २ ग्रंथ रचे और जो मन्दबुद्धि हैं उनके लिये आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरण रचकर ३२ वर्षकी अवस्थामें महा-राज तो कैलासकूं जाते भये फिर जो पद्म पादादि महारा-जके मुख्य शिष्य थे उन्होंनेभी बहुत ग्रन्थ रचे स्वामी आ-नन्दगिरिजीने तो सब भाष्यादि ग्रन्थों पर टीका करी और सुरेश्वराचार्य महाराजने वार्तिक बनाया पीछे उनके स्वामी शंकरानन्दभगवान् और विद्यारण्यादि जीने आत्म पुराण और पंचदशी वेदान्तसारादि बहुत सहस्राणि ग्रन्थ रचे वे ग्रंथ अबतक तो परमेश्वरकी कृपासे सूर्यवत् इस लोकमें प्रकाश रहेहैं ॥

अब इस समयमें ऐसे जो परमेश्वरके भक्त कि जिनकी गुरू परमेश्वर श्रद्धा भक्ति और उनकी यथाशक्ति आज्ञा करनी परन्तु आत्मबोधादि प्रकरणोंके विचारने

में भी असमर्थ उनकूं सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्व विचारनेके लिये और मुख्य मुंशी वंशीधर जी कायस्थ भटनागरके रहनेवाले श्रीगंगा यमुनाजीके मध्यमें इंद्रप्रस्थसे २२ कोश पूर्व दिशामें श्रीकन्दरापुरी प्रसिद्ध सिकन्दराबादके लिये कैसेहैं वे मुन्शीसाहब कि जिन्हों रूप लक्ष्मी विद्या तेज हुक्म और साम दान क्षमा औदार्यादि बहुत गुणकरके युक्त पतिव्रता स्त्री फिर यों आश्चर्य कि ऐसे समयमें सत्संगी परमेश्वरमें भक्ति गांभीर्यादि गुण करके युक्त तात्पर्य्य ऐसे सज्जन बुद्धिमान् इस समयमें होने कठिनहैं जिनकूं व्यवहारमें राज और परमार्थमें विद्वान् सराहना करतेहैं उन्हों-की श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रार्थनासे उन्होंके उपवन अन्तर्गत मकान कोठीमें ठहरकर और श्रीस्वामी आत्मागिरिजी महाराज रहनेवाले प्रथम गुजरातके जिनकूं वेदान्तशास्त्र-का अर्थ करामलकवत्‌है उनकी सहायसे श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक स्वामी मलूकगिरिजी महाराजका अनुचर शिष्य स्वामीजीके चरणकमलोंका पूजनेवाला मैं आनंदगिरि इस 'आनंदाऽमृतवर्षिणीका' बनानेवाला स्वामीजी और श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी कृपासे आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरणोंमें जो मैंने अर्थ सुनाहै उसमेंसे भी स्वल्प यथा-मति और श्रीमद्गीताकाभी अर्थ किसी किसी जगह इस-आनंदामृतवर्षिणीमें लिखूंगा ॥

प्रथम ज्ञानके मुख्य चार साधन हैं उनकूं लिखतेहैं ॥

विवेक १ वैराग्य २ शमादि षट्क सम्पत्तिः ३ मुमुक्षुता ४ अर्थ इनका यौंहै ॥

इस संसारमें नित्य अनित्य क्याहै और विचार करते करते यों निश्चय करना कि आत्मा नित्य और आत्मासे पृथक् सब अनित्यहै १ यहांके देखे सुने जो पदार्थ स्त्री चन्दनमालादि परलोकके जो सुने अमृत नन्दनवन देवांगनादि सबकूं अनित्य दुःखदायी जानकर मनकी इच्छापूर्वक सबकूं त्यागदेना फिर उनमें दीनता न होनी ब्रह्मलोककूं तृणवत् जानना २ तीसरेमें ६ भेद हैं शम १ दम २ उपरति ३ तितिक्षा ४ श्रद्धा ५ समाधान ६ इनका अर्थ याहै मन आदि अन्तःकरणकी संकल्पादि वृत्तियोंकूं रोकना वेदान्तशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासनके विना ३ श्रोत्रादि इन्द्रियोंकूं शब्दादि विषयोंसे रोकना देह यात्रा और श्रवणादिके विना २ यम नियमादि साधनोंसे अन्तःकरणकूं निरोध करके ॥

टी०—अहिंसा १ चोरी न करनी २ सत्य बोलना ३ ब्रह्मचर्य्य ४ अपरिग्रह अर्थात् शरीर यात्रासे सिवाय संग्रह न करना ५ इन पांचका नाम नियम है ॥

और शौच १ संतोष २ तप ३ स्वाध्याय अर्थात् प्रणवका जप ४ ईश्वर प्रणिधान अर्थात् परमेश्वरमें भक्ति ५ इन पांचका नाम नियम है॥

मू०—सब लौकिक वैदिक कर्मोंसे उपराम होना ब्रह्म-

तत्त्व विचारनेके लिये देहयात्रामात्र क्रिया करनी और जाग्रत् अवस्था सुषुप्तिवत् रहनी इसीका नाम उपरती है ३ श्रवणादिमें जो जो दुःख सुख पडे सब कूं सहजाना ४ जो वेदान्तशास्त्र और गुरु ज्ञानके देनेवाले कहते हैं उन्हों- में विश्वास करना कि इसी प्रकारहैं ५ श्रवणादिके समय भले प्रकार चित्तकूँ समाधान करना ६ तीसरे साधनके भेद होचुके चौथे साधनका यों अर्थ है मुक्तिको मुख्य पुरु- षार्थ समझकर मुक्तिकी नित्य इच्छा रखनी ॥

मुक्तिके ये चार साधन मुख्यहैं और सब साधनोंका इनहीमें अन्तर्भावहै जो इनका भलेप्रकार अनुष्ठान करे तो और किसी साधनकी अपेक्षा नहींहै सब साधनोंका यों तत्त्वहै ॥

ग्रंथमें जो चार अनुबन्ध होतेहैं उनकूँ लिखतेहैं ॥

अधिकारी १ विषय २ सम्बन्ध ३ प्रयोजन ४ इनहीं- चार साधनों करके जो सम्पन्नहो सो इस ग्रंथके पढने सुनने का अधिकारी १ जीव ब्रह्मकी एकता इसमें विषयहै २ यो ग्रंथबोधक और ग्रंथबोध्य इन दोनोंका बोध्यबोधक भाव इसमें सम्बंधहै ३ सब शोक दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति जिसकूँ मोक्ष कहते हैं यों इसका प्रयो- जन है ४ इसमें दृष्टांत योंहै जैसे रसोईमें अन्नका भूखा तो अधिकारी १ और जो अन्नमें मधुरादि स्वादहैं सो विषय २

और अन्न बरतनादिका संयोग सम्बन्ध ३ भूँखका दूर हो जाना प्रयोजन ४ जो कोई कहै तुम ब्रह्म २ कहतेहो दिखाओ आपका ब्रह्म कहां और कैसाहै जैसे नास्तिक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानताहै जो बात मूर्खताकी है सोई सुनो जैसे किसी बस्तुके सद्भावमें एक प्रत्यक्ष प्रमाणहै ऐसे और भी अनुमानादि प्रमाणहैं प्रथम तो प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकारकाहै बाहर १ भीतर २ बाहर ज्ञानेन्द्रियों करके शब्दादि विषयोंका और पंचभूतोंका ज्ञान होताहै परंतु नेत्र करके तो रूपका पृथ्वी जल तेजकाही ज्ञान होता है और रूपके विना शब्दादि चार विषयोंका और वायु आकाशका नेत्रसे ज्ञान नहीं होता है १ और भीतर दुःख सुख भूख शोकादिका ज्ञान अन्तःकरण करके होता है और सुषुप्तिमें जो अज्ञान उसका ज्ञान साक्षी चैतन्य करके होताहै उस पूर्वपक्षीसे बूझना चाहिये कि दुःख सुखादि जिसकूँ होतेहैं क्या वो नेत्रसे दिखासक्ताहै और जो कहे कि दुःखादिकूं नेत्रसे कौन दिखा सके तो हम कहते हैं ब्रह्मकूं नेत्रसे कौन दिखासके और श्रीकृष्णचन्द्रादि जो मूर्ति हैं वे मायामय मूर्ति हैं क्योंकि जो वेदशास्त्रोंका सिद्धांत है कि जो दृश्यहै सो अनित्य है "गोगोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानो भाई" जो उन मूर्तियों कूं कोई परमार्थसे सच्ची कहे तो वे मूर्ति अनित्य हैं परमेश्वर कूं वेद शास्त्र

नित्य कहतेहैं तात्पर्य्य परमेश्वर वास्तव अमूर्त है जैसे दुःखादि अन्तःकरण करके जानेजातेहैं सूक्ष्मदर्शी पुरुषों-कूं सूक्ष्म बुद्धि करके अन्तर्मुख वृत्ति करके और प्रत्य-क्षादि प्रमाण करके प्रमेय चैतन्यका अपरोक्ष होसक्ता है वेदान्तशास्त्रमें ६ प्रमाणहैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शाब्द ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि६इनका अर्थ भाषा-में भले प्रकार लिखनेसे बहुत विस्तार होता है इसलिये नाममात्र रस्ता दिखाते हैं प्रत्यक्षका अर्थ तो पीछे लिखा-गया अनुमानसे इस प्रकार सो ॥

टी०अनुमानके पांच अंगहैं पक्ष १ साध्य २ हेतु ३ व्याप्ति ४ दृष्टांत ५ इसलिये पंचावयवी अनुमान कहा जाता है जैसे पक्ष १ कियो पर्वत–साध्य २ अग्निवाला हेतु ३ धूमहोनेसे–व्याप्ति ४ जहां जहां धूम होताहै वहां निश्चय अग्निहोती है–दृष्टांत ५ जैसे रसोईके मकानमें ॥

मू०–ज्ञान होता है कोई मनुष्य जंगलमें चला जाता है अग्निकी इच्छा हुई देखा पर्वतमें धूम उठ रहा है वो अनुमान करताहै वो पर्वत अग्निवालाहै धूम होनेसे जहां जहां धूम होताहै वहां वहां निश्चय अग्नि होताहै जैसे रसोईके मकानमें बिचार देखो अग्नि प्रत्यक्ष नहींहै परन्तु पर्वतमें अग्निका होना प्रमाणहै २ उपमा करके इस-प्रकार ज्ञान होताहै गवय एकपशु होताहै एक पुरुषने उसकं कभी नहीं देखाथा नामसुनाथा उसने किसी जंगली

आदमीसे पूछा कि गवय कैसा होताहै जंगलीने उत्तर दिया कि गौकी सदृश होताहै कुछ एक अंतर होताहै वो पुरुष एकदिन जंगलमें गया उसने गवयकूं देखा उसगवयकूं देखकर उस बातको स्मरण किया कि गौकी सदृश होताहै निश्चय येही गवयहै विचारदेखो गवयका जान लेना प्रमाणहैं ३ शाब्दप्रमाण दो प्रकारका है वैदिक १ लौकिक दो वेदोंने जो कहा सो वैदिक प्रमाणहै जो यों शंका करे कि वेदोंने तो जीव ईश्वरका भेदभी कहाहै और अनेक श्रुति कर्म उपासनादि करके मोक्षका होना कहती हैं और बहुत श्रुति अन्नमय कोशकूं आत्मा कहतीहैं तो यों वेदोंका कहाहुआ आपके प्रमाणहै या नहीं इसका उत्तर यों है जो श्रुतिअन्नमयादि कोशकूं आत्मा कहतीहैं और जो कर्म उपासनादि करके मुक्तिका होना कहती हैं सबका अभिप्राय युक्तिसे अद्वैत ब्रह्मके बोधन करनेकाहै देहादिकूं परमार्थसे आत्मा कहना और जीव ईश्वरका भेद कहना और केवल कर्मउपासनादिसे मुक्तिका होजाना यों श्रुतिका तात्पर्य नहीं है क्योंकि फिर श्रुतिने निषेधभी किया है कि यों नहींहै२इस वाक्य करके और बहुत सहस्र ऐसी ऐसी अर्थवाली श्रुतीहैं और जो यों शंका करे कि प्रथम श्रुतिने देहादिकूं आत्मा कहा और जीव ईश्वरका भेद कहा फिर उसकूं निषेध किया प्रथमहीं एक निर्गुण ब्रह्मका उपदेश क्यों नकिया इसका उत्तर योंहै जो श्रुति प्रथमहीं ब्रह्मका बोधन करती

तो ब्रह्मकूं अतिसूक्ष्म होनेसे इस जीवकूं ब्रह्मका कभी बोध न होता इसलिये श्रुतिने क्रमसे अर्थात् प्रथम कर्म करना कहा फिर उपासना कही और प्रथम अन्नमयादिकूं आत्मा कहा फिर आनंदमय कोशकूं आत्मा कहा जब जिज्ञासुकी बुद्धि आनन्दमयादिकूं विचारते विचारते अति सूक्ष्महुई तब निर्गुण ब्रह्मका उपदेशकिया अब विचारो किश्रुतिका अन्नमयकोशादिकूं जो आत्मा कहना है और कर्मउपासनासे मुक्तिका होना यों परमार्थमें तो सच्चा नहीं परन्तु निर्गुण बह्मकूं साक्षात् बोधन करने वाली जो बहुत श्रुतिहैं उन्होंकी यह सब श्रुति उपयोगीहैं इसलिये वेदका कहा हुआ सब प्रमाण है कोई श्रुति साक्षात् और कोई कर्म उपासनादि द्वारा परम्परा करके बोधन करती हैं मूर्खलोग वेदोंके तात्पर्यकूं नहीं विचारके एक एक देश वेदोंका सुनकर कोई देह कोई इन्द्रिय कोई विज्ञानमय कोशादिकूं आत्मा बताते हैं कोई केवल कर्मसे कोई केवल उपासनादि से मुक्तिका होना कहते हैं समस्त वेदों का तात्पर्य नहीं विचारते पूर्वपक्ष की श्रुतियोंकूं प्रमाण देदे वृथा बाद करते हैं जैसे कोई मूर्ख अच्छे वैद्यके समीप बैठा था उस समय एक पुरुष आया उसकूं बहुत चलनेसे हारपनका ज्वर था वैद्यने नाडी देखकर कहा कि मोहनभोग खाओ ज्वरजाता रहेगा उसकूं हारपनसे ज्वर था मोहनभोगके खानेसे जाता रहा उस

मूर्खने समझा कि विशेष करके धनवाले बीमार होते हैं उनके लिये यह औषधि बहुत सुन्दर है ऐसा निश्चय करके सब रोगियोंकूं मोहनभोग बताने लगा जिसकूं हारपन का ज्वर होवे तो अच्छा होजावे शेष मरजावें ऐसे ही बहुत मूर्ख एक एक दो दो ओषधि वैद्यसे सुनकर वैद्यक करने लगे न वैद्यके तात्पर्यकूं विचारा न रोगीके रोगकूं विचारा सबकूं एकही औषधि बताने लगे दैवयोगसे कोई कोई अच्छा भी होजावे इसी प्रकार मूर्खने वेदके तात्पर्य कूं न अधिकारीकूं विचारते हैं केवल आजीविकाके लिये वैष्णव शैव शाक्तादि अपने अपने मतका उपदेश करके कहदेते हैं कि येही परमतत्त्व है औरों की असूया करदेते हैं विचारो कि जो सबकूं एक देवताका उपदेश करते हैं तो क्या सारी अवस्था में सबके एकही गुण सदा रहता है इस दृष्टांत कूं भले प्रकार विचारो वैद्य तो सद्गुरु की जगे कि जैसे प्रथम अध्याय में लिखे हैं और वैद्यककी पोथी वेद और शास्त्रोंकी जगे और रोगी मुमुक्षु की जगे क्योंकि तीन प्रकार का रोगहै कफ वायु पित्त और तीनहीं रोग इस जीवकूं हैं सत्व रज तमोगुण तमोगुणीके लिये कर्म रजोगुणी के लिये उपासना सत्वगुणी के लिये ज्ञान वेदोंनें कहाहै और उस मूर्ख की जगे इस कलियुग के ऐसे गुरु कि जो बिना वेदान्तशास्त्रके पढ़ेहुए और बिना वेदशास्त्रोंका तात्पर्य जानेहुए मूर्खोंकूं चेला करते हैं उन-

कूं केवल अपनी क्षमाही से प्रजोजन है शिष्य दुःख भोगो या नरक भोगो सो शिवजीने पार्वतीजीसे कहाहै ॥

श्लोक । गुरवोबहवःसन्तिशिष्यवित्तापहारकाः ॥
दुर्लभःसद्गुरुर्देविशिष्यसन्तापहारकः ॥ १ ॥

तात्पर्य वेद भगवान् का यों है जैसे व्यवहारमें मनुष्य सूक्ष्म बात कूं युक्ति करके कहते हैं ऐसे वेद भगवान् भी निर्गुण ब्रह्मकूं युक्ति करके बोधन करते हैं इस बातके स्फुट होने में मनुष्योंकी युक्तिकूं लिखते हैं शारीरक भाष्यमें स्थूलारुंधतीन्यायनाम करके यों युक्तिलिखीहै कुवाँरी लडकीकूं सौभाग्यके अर्थ अरुंधती का दर्शन कराया करते हैं प्रथम उससे कहते हैं कि यो चन्द्र अरुंधती है जब वो चन्द्रकूं जानजाती है फिर कहते हैं कि यों अरुंधती नहीं है यह सात तारे अरुंधती हैं फिर वैसेही निषेध करके कहते हैं कि यह तीन तारे हैं फिर उन तीन तारोमें से वशिष्ठजीकूं अरुंधती बताते हैं जब वो लडकी वशिष्ठजीकूं भले प्रकार जानजाती है पीछे उसकूं भी निषेध करके कहते हैं कि उस तारे के समीप जो बहुत सूक्ष्म ताराहै सो अरुंधती है जिसके भाग्य अच्छे होतेहैं उसको अरुंधती का दर्शन होजाता है अब बिचारना चाहिये कि प्रथम चन्द्रादिकूं अरुंधती कहना है उनका अरुंधती के बताने में सब वाक्य उपकारी हैं इसलिये सब प्रमाण हैं जिसके माल

वो लडकी अरुंधती को जानजाती है पीछे उसकूं यों निश्चय होजाती है कि मेरे माता पिताने जो प्रथम चन्द्रादि कूं बताया था तात्पर्य उनका अरुंधती के बोधन करनेमें था दार्ष्टान्तमें फिर भलेप्रकार विचारना चाहिये योंतो वैदिक प्रमाण कहा और लौकिक व्यास वशिष्ठ आप्तकामादि पुरुषों का जो कहा है सो प्रमाण है लौकिक प्रमाणमें भी वोही अरुंधती न्यायहै इस समयमें भी आप्तकाम ब्रह्मवादी परमहंस संन्यासी विशेष करके हैं और जो इस लोकमें अच्छे गुण कहे जाते हैं कि जिनकूं सब मतवाले अंगीकार करते हैं और वेद वशिष्ठादि का परमसिद्धान्त है और मुक्तिके मुख्य अंतरंग साधन हैं निराकांक्ष शान्ति निरहंकार सन्तोष कोमलता विवेक वैराग्य निर्वैरता अमान परोपकार क्षमा शम दमादि ऐसे ऐसे गुण और विद्या और विज्ञान विशेष करके ब्रह्मवादी संन्यासी परमहंसोंहीमें पाते हैं इसलिये उनकूं आप्तकाम होनेसे उनके वाक्य प्रमाण हैं४ किसीसे बूझा कहो, जी भोजन करआये उन्होंने कहा हम भोजन दिनमें हीं करते हैं और हृष्टपुष्ट देखते हैं अर्थसे यों ज्ञान हुआ कि रात्रीकातो इन्होंने निषेध नहीं कियाहै रात्रिकूं भोजन करते हैं बिचारो ये ज्ञान सच्चाहै या नहीं इसका नाम अर्थापत्ति प्रमाण है ५ किसीने कहा-तुम कहतेहो इस स्थानमें घटनहीं है इसमें क्या प्रमाण है उसने उत्तर दिया घटका लाभ न होनेसे अनुपलब्धि प्र-

माण है ६ तात्पर्य इन प्रमाणोंके लिखनेका योंहै कि ब्रह्म-
के सिद्धकरनेमें ऐसे ऐसे प्रमाण और अनेक युक्तिदृष्टान्त
हैं प्रत्यक्ष वादि आदिकूं तो ऐसे ऐसे उत्तर देनेयोग्य हैं कि
हे वादी विचार देख ब्रह्म ऐसे ऐसे प्रमाणों से देखनेमें
आताहै ॥

और भेदवादी उपासनावालों और कर्मवादी आदिकूं
यों उत्तर देना योग्यहै जैसे वेद की दृष्टिसे तुम सूतकी
आदि और परमेश्वर का दास मानते हो ऐसेही वेदने भी
कहाहै तू ब्रह्महै जो यों कहो हम अभी इस योग्य नहीं हैं ऐ-
सा कहैं मैं ब्रह्महूं हम बूझते हैं किसी प्रतिबन्ध से तुम कूं
महावाक्यार्थ अर्थात् मैं ब्रह्महूं यो अपरोक्ष न होती यों
कहो वेदान्तशास्त्र का श्रवणादि और मैं ब्रह्महूं ऐसी अने-
क उपासना करनी कहां निषेधहै और विचारो अभ्यास
अनजान वस्तुका कहतेहैं और अभेद उपासना करनेमें
छंदोग्य उपनिषदादि गीता भाष्यादि, बहुत ग्रंथहैं
उनमें ऐसी ऐसी उपासना करनेमें ब्रह्महूं मैं ईश्वर
हिरण्यगर्भ विराट हूं भले प्रकार ब्रह्मलोकादि फलक
सहित लिखीहैं और भेदउपासनामें बहुत जगे दोष क-
हेहैं और भलेप्रकार विचारो परिपूरण कूं परिछिन्न कहना कि-
तना बड़ाअनर्थहैवेदोंमें प्रकट लिखा है शोक कूं आत्माका
जाननेवाला तरताहै १ उसी आत्मा कूं जान करकेमृत्युकूं
उल्लंघेगा और कोई रस्ता मुक्तिका नहींहै२कर्मधनपुत्र करके

मुक्त नहीं होता है सबका त्यागही करके मुक्त होता है ३
ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है ४ ऐसी ऐसी अर्थवाली
बहुत श्रुति हैं फिर तुम कूं मैं ब्रह्म हूं इस अर्थ ग्रहण क-
रने में क्या करना योग्य है वेदों का तात्पर्य्य सुनो कर्म
करके तमोगुण का नाशहोताहै निद्रा, आलस्य, प्रमादादि
तमोगुण का कार्य है प्रातःकाल के स्नानादि कर्म करने से
उनका नाश होता है व्रतादिककरनेसे इन्द्रियादि का दमन
होता है दानादि करनेसे पदार्थोंमेंसे आसक्ति दूरहो
तीहै तीर्थादि करने से घरके लोगों से प्रीति कमहोतीहै प-
रदेश में जाकर बुद्धिबढ़तीहै तीर्थों में महत्पुरुषों का स
मागम होता है उनके सत्संग करने से संसार से चित्त
उपराम होता है और भी बहुत इस प्रकारके कर्म
कार्य्य हैं चित्तसे विचारने योग्य है अन्तःकरण का
विषयों से उपराम होना इसी कूं अन्तःकरण की शुद्धि
कहते हैं उपासना से रजोगुण का नाश होताहै विक्षेप
तृष्णा लोभादि रजोगुण का कार्य्य है ध्यानादि करके
उनका नाश होता है ऐसे ऐसे साधनों से बडा जो सत्व-
गुण उसकूं प्रकाशमय शान्तरूप होने से कार्य्य उसका
विवेक, वैराग्य, शम, दमादि हैं इन साधन सम्पन्न होकर
जगत् ब्रह्म,बन्ध मोक्ष नित्यानित्यादिका विचार किया
विचार करने से यों ज्ञान हुआ कि ये सत्वादि तीनों गुण

माया के हैं मायाकूं मिथ्या होने से इन गुणोंका जितना कार्य्य स्थूल सूक्ष्म है सब मिथ्या है और मैं असंग सच्चिदानन्द नित्यमुक्तहूं इसीको ज्ञान कहतेहैं योहीं ज्ञानमुक्तिका हेतुहै और परमसिद्धांत तो वेदोंका यों है कि यह जगत् जीव ईश्वर प्रतिबिम्बके सहित न कभी हुआ है न होगा न है एक मन वाणी करके अगोचर, प्रत्यगात्मा, नित्यानन्दरूप, नित्यमुक्तहै न किसीका नाश, न उत्पत्ति, न देहके साथ सम्बन्ध है न कोई सुख दुःखधर्म वाला, न श्रवण करनेवाला साधक, न मुक्तिकी इच्छावाला न मुक्त है, तात्पर्य जोहै सोहै यों श्रुतिका अर्थ है ॥ इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अब अध्यारोप अपवाद न्याय करके निष्प्रपञ्चब्रह्म जगत्का प्रपंचकरके फिर मुक्तिकूं सिद्ध करते हैं मुक्ति महावाक्यार्थके ज्ञानसे होतीहै जैसे किसीकूं रज्जुमें सर्पकी भ्रांति है उसका दुःख कम्पादि लौकिक वाक्यार्थ के ज्ञानसे नाश होता है यहांके स्त्री चन्दन मालादि और परलोकके अमृत, नन्दनवन, देवाङ्गनादिकी प्राप्तिसे उसका दुःखनाश नहीं होताहै ऐसे इस जीवके तीन ताप पञ्च क्लेश यहांके और स्वर्गादिके पदार्थोंकी प्राप्तिसे नाश नहीं होतेहैं और न कम होतेहैं महावाक्यार्थके ज्ञानसे नाश होतेहैं

माहावाक्यार्थका ज्ञान जब होताहै प्रथम पदार्थका ज्ञान होजावे कै पदोंका नाम वाक्य होताहै महावाक्यमें तीन-पद हैं तत् त्वम् असि इस लिये तत् पदका अर्थ अभी आगे लिखेंगे उससे प्रथम तत्पदार्थका लक्षण लिखतेहैं तत्पदार्थका अर्थात् ब्रह्मका लक्षण दो प्रकारका है तटस्थ १ स्वरूप २ सृष्टि स्थिति लयका जो कारण अर्थात् जिससे यो जगत् हुआ है जिसमें ठहर रहाहै प्रलय समय जिसमें लय होजाता है सो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है और सत् चित् आनन्दादि स्वरूपलक्षण है जैसे किसी पुरुषका लक्षण श्याम गौर रँग इतनी अवस्था ऐसे नेत्रादि हैं यो उसका स्वरूप लक्षण है और जिसके बाहर कुंवा ऐसी उसकी हवेली ऐसे वस्त्र पहिररहाहै यो उसका तटस्थ लक्षण है तत्पदका अर्थ दो प्रकार का है वाच्य १ लक्ष्य २ मायोपहित जो चैतन्य सो तत्पदका वाच्यार्थ है मायो-पहितका अर्थ योहै माया उपहित यो दो पदहैं यो दोनों मिलके व्याकरणकी रीतिसे मायोपहित यो एक शब्द बोलाजाताहै मायोपहित अर्थात् माया करके युक्त जैसे बि-म्ब घटगत जल करके युक्त अथवा जैसे स्फटिक लालरं-गकी सन्निधीसे लालही प्रतीत होता है ऐसेही शुद्ध ब्रह्म मायाकी सन्निधीसे ईश्वर प्रतीत होतेहैं जैसे स्फटिक लालरंग करके उपहित लाल स्फटिक कहा जाताहै और बिम्ब घटगत जल करके उपहित प्रतिबिम्ब कहा जाताहै

ऐसेही मायोपहित शुद्ध चैतन्य जगत्कारण ईश्वर कहे जातेहैं उपहितका अर्थ यहां भलेप्रकार याद करलेना भलेप्रकार बुद्धिमें निश्चय करलेना आगे बहुत जगे काम पड़ैगा प्रसंग यों था मायोपहित चैतन्य तत्पदका वाच्यार्थ और मायासे युक्त चैतन्य तत्पदका लक्ष्यार्थहै जैसे प्रतिबिम्बसे बिम्ब नित्यमुक्त है और शुक्ति भ्रान्तिकालमें भी रजत नहीं हुई और जैसे स्फटिक लालरंगकी सन्निधिकालमें भी श्वेतही रहता है ऐसेही शुद्धब्रह्म मायोपहित और अविद्योपहित कालमें भी ॥

टी०—अविद्या उपहित ये दोनों पद मिलकर व्याकरणकी रीतिसे एक अविद्योपहित बोला जाताहै अर्थ यो हुआ अविद्या करके उपहित,

मू०—चैतन्य असंग शुद्धही है माया किसकूं कहते हैं सुनो जैसे शुक्तिमें रजतकी भ्रान्ति ऐसे चैतन्यमें कारण सूक्ष्म स्थूल प्रपंच जड़की जो भ्रान्ति इसी का नाम माया है यो सब ब्रह्म है १ यो सब वासुदेव है २ ऐसी ऐसी अर्थवाली बहुत श्रुतिस्मृति चैतन्यका भाव और जड़का अभाव कहती हैं चैतन्य पदार्थ क्या है सुनो सत । चित् । आनन्द । शुद्ध । बुद्ध । एक । स्वयंप्रकाश । अनन्त । नित्यमुक्त । शान्त । अखंड । अज । अमर । परिपूर्ण । निरंजन । निरवयव । असंग । अद्वय । अव्यक्त । अचिन्त्य-सर्वगत । अचल । सनातन । नित्य । आत्मा । परमात्मा

परमेश्वर । ब्रह्म । प्रत्यगात्मा । ये चैतन्य पदार्थके विशेषण हैं और भी चितिज्ञान स्वरूपादि विशेषण हैं और जड़ अज्ञानसे आदि लेकर जो स्थूल पर्यन्त हैं सो सब जड हैं अज्ञानकूं प्रकृति और गुणोंकी साम्यावस्था और मूल अज्ञान भी कहते हैं सो अज्ञान सत्व, रज, तम, इन तीन गुणोंवालाहै स्वरूप उसका अनिर्वाच्य है सत् असत् करके कुछ नहीं कहाजाताहै जो सत् कहैं तो कुछ पदार्थ नहीं है और असत् कहैं तो प्रतीत होताहै जैसे भ्रान्ति समय शुक्तिमें रसते अनिर्वाच्य है परंतु ज्ञानसे उस अज्ञानका अभाव होनेसे वो अज्ञान भावरूप है जैसे लौकिक व्यवहारमें प्रथम कछु भूलजावे फिर याद आजावे और जैसे बालक अवस्थामें तूलाज्ञानका भाव होता है ॥

टी०—तूलाज्ञान यो है जैसे किसी पदार्थकूं भूलजावे उसमें जो कारण और बालक अवस्थामें जो अज्ञान सो तूलाऽज्ञान उसका न्याय शास्त्र और प्राकृत विद्याके पढ़नेसे और लौकिक व्यवहारसे नाश हो जाताहै और मूलाऽज्ञानका तौ केवल ब्रह्मविद्यासे नाश होताहै ॥

मू०—विद्या पढ़ करके और व्यवहारादिसे उस अज्ञानका अभाव होजाताहै ऐसे अज्ञानकालमें कहता है कि मैं ब्रह्म कूं नहीं जानताहूं ज्ञानकाल में कहता है कि मैं ब्रह्मकूं जानता हूं ऐसा ऐसा अनुभव व्यवहार होनेसे निःसन्देह प्रतीत होताहै कि एक अज्ञान पदार्थ अनिर्वाच्य

है भाव और अभाव उसके दोनों प्रतीत होते हैं अज्ञान १ माया अविद्या का भेद २ मायोपाहित सबल ब्रह्म ३ जीव ४ जीव ईश्वरका भेद ५ शुद्धब्रह्म ६ ये सब अनादि हैं इनकूं यों नहीं कहाजाताहै ये कबसे हैं और कबसे इनका भेद हुआहै और शुद्ध ब्रह्म कबसे मायोपहित अविद्योपहित हुए जैसे यों नहीं कहाजाताहै शरीर प्रथम हुआ या कर्म दृष्टान्त यों है बीज प्रथम हुआ या वृक्ष और जैसे स्वप्नमें जो उपवन, मंदिर, मृग, मित्र, शत्रु आदि दीखतेहैं विचारो कि उपवन मंदिरकी कौनसे सम्बत मुहुर्त में नींव रक्खी गई है और मित्रादि का कौन से सम्बत् मुहूर्त में जन्म हुआहै योंही निश्चय करो जैसे दृष्टांत के पदार्थोंकी व्यवस्था है वैसेही दार्ष्टान्त के पदार्थोंमें शुद्धब्रह्म अनादि भी और अनित्यभी हैं और सब अनित्य हैं ज्ञानकाल में शुद्ध ब्रह्मके बिना सब नष्ट होजातेहैं वो अज्ञान माया अविद्या भेदसे दो प्रकार का है शुद्ध सत्त्व प्रधान हुआ माया मलिनसत्व प्रधान हुआ अविद्या कहाजाताहै रजोगुण तमोगुण करके जो सत्त्वगुण नहीं तिरोभाव होता है सो शुद्ध सत्व और रज तमोगुण करके जो सत्त्वगुण तिरोभाव होजाता है सो मलिन सत्त्व कहाजाता है माया अविद्याका भेद ऐसे समझो जैसे एक पुरुष क्रियाके निमित्तसे पाठक याचक कहलाता है और जैसे एक स्त्री पिताकी अपेक्षा करके कन्या पतिकी अपेक्षा करके पत्नीहै ऐसे वो अज्ञान ईश्वरकी अपेक्षा करके माया और

जीवकी अपेक्षा करके अविद्या कहाजाताहै ऐसा भेदनहीं समझना कि अज्ञानके दो टूक होगये, अथवा उस अज्ञानकी शक्ति दो प्रकारकीहै ज्ञानशक्ति १ क्रिया शक्ति २ रजोगुण तमोगुण से नहीं दबा जो सत्वगुण सो ज्ञानशक्ति १ क्रियाशक्ति दो प्रकारकी है, आवरणशक्ति १ विक्षेप शक्ति रजसत्वगुण से नहीं दबा जो तमोगुण सो आवर्ण शक्ति और तम सत्त्वगुण से नहीं दबा जो रजोगुण सो विक्षेपशक्ति वोही अज्ञान आवरण शक्ति प्रधान हुआ अविद्या और विक्षेपशक्ति और ज्ञानशक्ति प्रधान हुआ माया मायोपहित चैतन्य ईश्वर कहाजाता है योंही तत्पदका वाच्यार्थ है और वोही चैतन्य अविद्योपहित जीव प्राज्ञ कहाजाताहै; मायोपहित ईश्वर तो मायाके वश नहीं हुए इस लिये सर्वज्ञ ईश्वरादि नाम करके कहेगये और अविद्योपहित जीव अविद्या के वश होगया उस अविद्याकी विचित्रतासे नानाप्रकारका होगया इसलिये अल्पज्ञ कहागया जैसे कोई पुरुष शीशके मकान में बैठा हुआ आपकूं और औरोंकूं भी देखताहै मृत्तिकाके मन्दिरमें बैठा हुआ आपही कूं देखता है कभी बहुत अन्धेरेमें अपना आप भी नहीं देखता है माया में शुद्ध सत्व प्रधान होनेसे माया शीशेके मन्दिर की सदृश है और अविद्या में मलिन सत्त्व प्रधान होने से अविद्या मृत्तिका के मन्दिर के सदृश है माया में प्रतिबिम्ब जो चैतन्यका सो

ईश्वर अविद्यामें प्रतिविम्ब जो उसी चैतन्यका सो जीव वहां विम्ब का भेद सूर्य विम्ब और घट गत जल प्रतिविम्ब-वत् नहीं समझना ऐसे समझना जैसे आकाशका प्रतिबिम्ब जल में प्रथम दृष्टांत में भी कुछ दोष नहीं है परंतु परि-छिन्न भेदसा प्रतीत होताहै सो कुछ दोष नहींहै दृष्टांत एक देश में होताहै अकाशके दृष्टांत से बिम्बका भेद और परिछिन्नता नहीं प्रतीत होतीहै इस पक्षमें जीव तो एकही है परंतु अन्तःकरण की उपाधि से वहुत प्रमाता कल्प रक्खे हैं अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्यकूं प्रमाता कहतेहैं कोई ऐसा कहते हैं अनेक अज्ञान हैं बनवत् जो आज्ञानोंका समुदाय सो समष्टि अ र वृक्षवत् जो एक अज्ञान सो व्यष्टि वोही चै-तन्य।अज्ञान।समष्टि।करके उपहित ईश्वर और वोही चैतन्य व्यष्टि अज्ञान करके उपहित जीव कोई ऐसा कहते हैं करणी भूत जो अज्ञान उससे उपहित चैतन्य ईश्वर और अन्तः करण करके उपहित वेही चैतन्य जीव तात्पर्य्य कारण उपाधिवाले ईश्वर और कार्य्य उपाधिवाला जीव सबका सिद्धान्त यो है मायोपहित चैतन्य ईश्वर । अविद्योपहित चैतन्य जीव सो ईश्वर ज्ञानशक्ति करके उपहित जगत् के निमित्त कारण विक्षेपशक्ति करके उपहित उपादान कार-ण जैसे मकडी जालेके प्रति चैतन्य प्रधानता करके तो नि-मित्त कारण और शरीर प्रधानता करके उपादान कारण-यो मकडी का दृष्टान्त श्रुतिने कहाहै कि जिस प्रकार मक-

ड़ी जाले कूं रचती है फिर अपनेमें लय करलेतीहै तात्पर्य परमेश्वर जगत्के कर्त्ता अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं अर्थात् नहीं हैं भिन्न निमित्त और उपादान कारण जिन्होंसे सो अभिन्न निमित्तोपादान कारण इस प्रकार जगत्के कारण ईश्वरहैं ऐसे नहीं हैं जैसे घटके बनाने में कुलाल भिन्न निमित्तोपादान कारण है अर्थात् भिन्नहै निमित्त और उपादान कारण जिससे सो भिन्न निमित्तोपादान कारण कुलाल तात्पर्य घटके बनाने में मृत्तिका उपादान और कुलाल दण्ड चक्रादि निमित्त हैं ईश्वर तो आपही उपादान और आपही निमित्त कारण है पूर्वरीतिसे भले प्रकार विचारना योग्य है निरीश्वर वादी पूर्वमीमांसकादि कूं जो यो तर्क जगत्के मोहके लिये बाचाल करावें हैं उस तर्ककूं सुनों वो लोग यों कहतेहैं ईश्वर जो त्रिभुवन कूं रचतेहैं सो त्रिभुवनके रचने में क्या क्या चेष्टा करते हैं और रचनेके समय किस प्रकारकी कायाहै जिनकी अर्थात् किस रूप हुए हुए और क्याहै उपाय और आधार जिनका और क्या उपादानहै यों तर्क उनकी अतर्क्य ईश्वर के विषय दुर्बलहैं परमेश्वर की रचना में तर्क का अवसर नहीं क्योंकि परमेश्वरकी माया नहीं घटने के योग्य पदार्थ कूं घटा सकीहै और मनुष्यकी रचना इन्द्रजालादिमें बुद्धि काम नहीं करती है परमेश्वर की रचनामें तो नष्टबुद्धी तर्क करते हैं तो भी उस तर्कके खण्डनके लिये कहाहै जो ऊपर अ-

भिन्ननिमित्तोपादान कारण प्रकार वो वज्र उनके मुखमें मारना योग्यहै ॥

इस रीति से जगत् का कर्त्ता ईश्वर कूं सिद्ध किया और कारण प्रपंचका यहांतक निरूपण किया जगत्में तीनि प्रपंचहैं कारण १ सूक्ष्म २ स्थूल ३ अब सूक्ष्म प्रपंच का निरूपण करते हैं पूर्व सिद्धि किये हुए जो मायोपहित चैतन्य ईश्वर उनसे प्रथम महत्तत्त्व अहंकार की सूक्ष्म अवस्था फिर महत्तत्त्व से अहंकार अर्थात् मैं एक हूँ बहुत होजाऊं फिर अहंकारसे आकाश आकाशसे वायु वायुसे तेज तेजसे जल जल से पृथिवी अर्थ इन सबका ऐसा करना महत्तत्त्व करके उपहित जो ईश्वर उनसे अहंकार हुआ तात्पर्य्य येहि है महत्तत्त्वादि सब जड़ पदार्थ हैं विना चैतन्य रचना नहीं होसक्ती है निश्चय इसी आत्मा से आकाश हुआहै यो श्रुतिका अर्थहै माया कूं तीन गुणोंवाली होनेसें कार्य्य भी उसका आकाशादि पंच तीन गुणोंवाले हैं उन कूं अपंची कृत सूक्ष्म भूत और तन्मात्रा भी कहते हैं इन्हीं सूक्ष्म भूतों से पंचीकृत स्थूल भूत उत्पन्न हुए हैं और सूक्ष्म शरीर १७ लिंगवाला उत्पन्न हुआ। १७ लिंग येहैं ॥

टी०—सूक्ष्म शरीर कूं कोई १६ लिंग कोई १७ कोई १९ लिंगवाला कहतेहैं लिंगही कूं तत्त्व कहते हैं इन्द्रिय दश प्राण पंच अन्तःकरण

मू०–शब्दादिका ज्ञान होताहै जिन इन्द्रियोंसे सो ज्ञाने-न्द्रिय पंच और कर्म किया जाताहै जिन इन्द्रियों से सो कर्मेन्द्रिय पंच प्राणादि पंच मन बुद्धि २ आकाशादिके सत्वगुणके अंशसे पृथक् पृथक् पंच ज्ञानेन्द्रिय हुए सोई लिखतेहैं आकाश से श्रोत्र वायु से त्वक् तेजते चक्षु जलसे रसना पृथिवीसे घ्राण और आकाशादि के मिलेहुये सत्व-गुणके अंशसे अन्तःकरण सो वृत्ति भेदसे चार प्रकारका है संकल्प विकल्पवाला मन निश्चयवाली बुद्धि अभिमा-नवाला अहंकार अनुसंधान वाला चित्त और आकाशादि के रजोगुणके अंशसे पृथक् पृथक् पंच कर्मेन्द्रिय हुयेहैं आकाशसे वाक वायुसे पाणि तेजसे पाप जलसे उपस्थ पृथिवीसे वायु और आकाशादिके मिले हुये रजोगुण के अंशसे प्राण सो वृत्ति भेदसे पांच प्रकारका है, बाहरको निकलनेवाला नासिका मुखमें रहने वाला प्राण १ नीचेकूं जानेवाला वायु आ-दिमें रहनेवाला अपान २ सब शरीरमें फिरनेवाला सब

एक इस प्रकार १६ और इन्द्रिय प्राण १५ मन बुद्धि २ इसप्रकार १७ और इन्द्रिय प्राण १५ मन बुद्धि चित्त अहंकार ४ इसप्रकार १९ परन्तु बहुत १७ तत्त्ववाला कहते हैं)

शरीरमें रहने वाला व्यान ३ खाये पियेकूं सब नाडियोंमें पहुंचानेवाला सारे शरीर में रहनेवाला समान ४ ऊपरकूं जानेवाला कण्ठमें रहनेवाला उदान ५ और पंच उप-प्राण हैं उनका भी इन्हीं पांचमें अंतर्भावहै, उद्गारमें जो हेतु सो नाग १ नेत्रोंके खोलने मीचनेमें जो हेतु सो कूर्म २ भूकका जो हेतु सो कृकरः ३ जम्भाई लेनेमें जो हेतु सो देवदत्त ४ सब जगह रहनेवाला धनंजय जो मुरदेकूं फुला देता है आकाशसे दो इन्द्रिय श्रोत्र और वाक्हेतु यह है श्रोत्र करके जो आकाश का सद्गुण सो ग्रहण किया जाता है और वाक्से बोला जाताहै वायुसे दो इन्द्रिय त्वक् और पाणि हेतु येहै त्वक् करके तो वायुका जो स्पर्श गुण उसका ज्ञान होताहै और पाणिसे त्वक्की रक्षा होतीहै तेजसे दो इन्द्रिय चक्षु और पाद हेतु यो है चक्षु करके तो तेजका जो गुणरूप उसका ज्ञान होताहै और पैरके मलनेसे चक्षुकी गरमी दूर होतीहै जलसे दो इन्द्रिय रसना उपस्थ हेतु यो है रसना करके तो जलका जो गुण रस उसका ज्ञान होताहै और तरह रहता है और उपस्थ करके जलका त्याग होताहै पृथिवीसे दो इन्द्रिय घ्राण और वायुहेतु यो है घ्राण करके तो पृथिवीका जो गुण

गंध उसका ग्रहण होताहै और वायुसे गंधका त्याग होताहै, और अन्तःकरण समष्टि पांचों भूतोंके सत्वगुणके अंशसे उत्पन्न हुआहै हेतु योहै पांचों ज्ञानेन्द्रियोंके विषोंकूं अनुभव करताहै, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, ये पंचकोश कारण सूक्ष्म स्थूल शरीरों के अन्तर्भाव हैं आगे जो कहेंगे स्थूल शरीर सो तो अन्नमय कोश है सूक्ष्मशरीरमें तीन कोशहैं पंच कर्मेन्द्रिय करके सहित जो पंचप्राण सो प्राणमय कोश और पंच ज्ञानेंद्रिय करके सहित जो मन सो मनोमय कोश और पंच ज्ञानेन्द्रिय करके सहित जो बुद्धि सो विज्ञानमय कोश है मनोमय विज्ञानमय कोशमें यह भेद मनोमय कोश तो करण और विज्ञानमय कोश कर्त्ता है क्रियामें कर्त्तादि ये षट्कारक होते हैं । कर्त्ता कर्म च करणं संप्रदानं तथैव च । अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ॥ और कारण शरीरमें कारणशरीरभूता अविद्यामें जो मलिन सत्व सो प्रिय मोद प्रमोद वृत्तिकरके सहित आनन्दमय कोशहै कोई अज्ञानकूं आनन्दमय कोश कहतेहैं जो वस्तु प्राप्त नहो आर अच्छी प्रतीत हो उस समयकी वृत्तिकूं प्रिय कहतेहैं १ फिर वोही वस्तु जब अपनी होजावे उस समयमें जो आनन्द सो मोद २ उसके भोगनेमें जो आनन्द वो प्रमोद ३ जो सूक्ष्म शरीर

समष्टि व्यष्टि भेदसे दो प्रकारका है वनवत् सूक्ष्म शरीरोंका समुदाय समष्टि वृक्षवत् पृथक् पृथक् एक एक सूक्ष्म शरीर व्यष्टि जैसे उपवन समष्टि और उसी उपवनका एक एक वृक्ष व्यष्टि सूक्ष्म समष्टि करके उपहित वोही मायोपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ कहाजाता और सूक्ष्म व्यष्टि करके उपहित वोही अविद्योपहित चैतन्य तैजस कहाजाताहै समष्टिव्यष्टि कूं तादात्म्य होनेसे उन करके उपहित हिरण्यगर्भतैजसकी भी तादात्म्यहै जैसे वन और वृक्ष करके उपहित आकाशमें कुछ भेद नहीं ऐसे हिरण्यगर्भतैजसमें भेद नहीं और भी दृष्टांत हैं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष नगर मोहल्ला इनका बिना विचारके भेद है वास्तव भेद नहीं, जो सूक्ष्म शरीर अविद्या काम कर्म करके सहित पुर्यष्टक कहाता है सोई लिखतेहैं, ज्ञानेन्द्रिय पंच १ कर्मेन्द्रिय पंच २ चार अन्तःकरण ३ पंचप्राण ४ पंचसूक्ष्म भूत ५ अविद्या ६ काम ७ कर्म ८ अविद्याका कार्य चार प्रकारका है ब्रह्मलोकपर्यन्त जो पदार्थ हैं इनमें नित्य बुद्धि होनी १ दुःखोंमें और दुःखोंके साधनोंमें जो सुखबुद्धि २ देहादि अनात्मा पदार्थों में आत्मा बुद्धि ३ अपवित्र जो अपने और पुत्रादिके शरीर उनमें पवित्र बुद्धि ४ काम रागकूं कहतेहैं कर्म तीन प्रकारका है संचित १ आगामी २ प्रारब्ध ३ अपना किया-

हुआ कर्म फलकूं नहीं देकर जो अदृष्टरूप करके ठहर रहाहै सो सञ्चित १ इस शरीर में जो किया जाताहै सो आगामी २ स्थूल शरीरके जन्म स्थितिका जो हेतु सो प्रारब्ध ३ सञ्चितआगामी कर्मोंके फलका भोग करके वा उसका विरोध कर्मकरके वा ब्रह्मज्ञानकरके नाश होजाताहै॥

और प्रारब्ध कर्मका भोगनेसे नाश होताहै प्रारब्धसे पृथक् अविद्यादि पंच क्लेश हैं उनका ब्रह्मज्ञानसे नाश होताहै अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ कारण कार्यकरके अविद्या दो प्रकारकी ऊपर लिख आये हैं अहंकारकी सूक्ष्म अवस्थाकूं अस्मिता और महत्तत्त्व और सामान्य अहंकार भी कहते हैं राग कामको कहते हैं द्वेष क्रोधको कहते हैं अपने आप ग्रहण करके फिर उसके त्यागको न सहना इसकूं अभिनिवेश कहते हैं ब्रह्मकूं जान करके सारे क्लेशोंसे छूटजाता है या श्रुतिका अर्थ है यहांतक सूक्ष्मशरीरकी उत्पत्ति लिखी अब स्थुल शरीर की उत्पत्ति लिखते हैं, पंचीकृत पंचस्थूल भूतहैं आकाशादिके तामस अंशकूं लेकर अर्थात् बुद्धिमें कल्पना करके प्रथम एक एक के दो दो टूक करके दोमेंसे एककूं पृथक् रक्खे उस दूसरेके चार चार भाग करे फिर उन चारों भागोंको अपने अपने भागको छोड़कर औरोंमें मिला देना यो पंचीकरण कह-

लाताहै जिसका भाग जिसमें सिवाय है वोही कहनेमें आताहै जैसे मनुष्यशरीरकूं पार्थिव कहते हैं, पंचीकृत स्थूल भूतों का जो रचा हुआ स्थूल शरीर उसमें पंचीकृत स्थूल भूतहैं और अपंचीकृत भूतोंके तामस अंशका कार्य इस प्रकार है, पंचीकृत जो पृथिवी उसकी पृथिवीका कार्य अस्थि क्योंकि कठिन है जलका कार्य मांस कुतः वहजाता है और शिथिलहै तेजका कार्य नाड़ी कुतः ज्वरकी परीक्षा करती है वायुका कार्य त्वक् कुतः स्पर्श करती है आकाशका कार्य रोम कुतः काटनेसे दुःख नहीं होताहै पंचीकृत जो जल उसकी पृथिवीका कार्य शोणित कुतः पृथिवीकी सदृश रक्तहै जलका कार्य्य शुक्र कुतः श्वेतहै और उससे गर्भ होताहै जैसे जलसे सब वस्तुकी उत्पत्ति है तेजका कार्य मूत्र कुतः उष्णहै वायुका कार्य स्वेद कुतः बहुत दम-चलनेसे आजाताहै और वायुसे सूख जाताहै आकाशका कार्य राल कुतः ऊपरकूं जातीहै और आकाश-भी ऊंचाहै और पंचीकृत जो तेज उसकी पृथिवीका कार्य आलस्य कुतः आलस्यमें जड़ताहै जलका कार्य कान्ति कुतः जलके स्पर्श स्नानादिसे सुन्दरता होती है तेजका कार्य क्षुधा कुतः अन्नकूं पचातीहै वायुका कार्य तृषा कुतः ओष्ठ कंठ सूखजाताहै आकाशका कार्य निद्रा कुतः निद्रामें निर्विकल्प होजाताहै और पंचीकृत जो वायु

उसकी पृथिवीका कार्य संकोचन कुतः जिस समय मनुष्य सुकड़ कर बैठे तो भारी और जड़सा होजाता है जलका कार्य चलना कुतः जल भी चलता है तेजका कार्य उठना उछलना कुतः उठने उछलनेमें ऊंचा होताहै और अग्नि भी ऊपरकूं जाताहै वायुका कार्य दौड़ना कुतः दौड़नेमें बल होताहै और वायुमें भी बल और वेगहै आकाशका कार्य पसरना कुतः आकाश भी व्यापक है और पसारनेमें भी व्यापक होताहै अर्थात् फैलता है और पंचीकृत जो आकाश उसकी पृथिवी का कार्य कटी जहां मल रहता है कुतः गंध स्थान है जलका कार्य उदर कुतः जलका स्थानहै तेजका कार्य हृदय कुतः उष्ण रहताहै वायुका कार्य कंठ कुतः वायुका स्थानहै आकाशका कार्य शिर कुतः शब्दस्थान है और अनहद शब्द होता रहताहै और पंचीकृत आकाशका भेद दूसरे प्रकार ऐसेहैं उसकी पृथिवीका कार्य भय कुतः भयसे अन्तःकरणमें तम प्रधान होजाताहै और तम पृथिवीका भाग है जलका कार्य मोह कुतः जलके स्पर्शसे उत्पन्न होताहै जो सुंदरता उसकूं देखकर मोह होता है तेजका कार्य क्रोध कुतः क्रोधके समय हृदय भस्म होताहै वायुका कार्य काम कुतः वायुभी चंचलहै और कामभी चंचलहै आकाशका कार्य लोभ कुतः आकाशकीभी अवधि नहीं लोभकी भी अवधि नहीं ॥

	पृथिवी	जल	तेज	वायु	आकाश
पृथिवी	अस्थि	मांस	नाडी	त्वचा	रोम
जल	रक्त	वीर्य	मूत्र	स्वेद	राल
तेज	आलस्य	कान्ति	भूक	प्यास	निद्रा
वायु	संकोचन	चलना	उठना उ-छलना	दौड़ना	फहलना
आकाश	कमरमें	पेटमें	हृदयमें	कंठमें	शिरमें
दूसरी प्रकार आकाश	भय	मोह	क्रोध	काम	लोभ

शब्द गुण जिसमें रहताहै सो आकाश सावकाशरूप रूपरहित स्पर्शवाला वायु गर्मस्पर्शवाला तेज सो चार प्रकारकाहै अग्नि आदि स्वर्गादि विद्युदाऽऽदि जठराग्नि शीत स्पर्शवाला जल गंधवाली पृथिवी पंच भूतोंके जो लक्षण कहेहैं सो तीनों दोषोंसे रहित हैं जिस लक्षणमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भव ये तीन दोष पाये जावें वो प्रमाण नहीं जैसे किसीने कहा गौ कपिला होतीहै इ-समें अव्याप्ति दोषहै कुतः बहुत गौ कपिला नहीं होतीं फिर कहा सींगवाली गो होतीहै इसमें अतिव्याप्ति दोषहै क्यों कि सींगहिरन आदिके भी होतेहैं फिर किसीने कहा एक खुरवाली गो होतीहै इसमें असम्भव दोषहै कुतः यह लक्षण

गौमें सम्भव नहीं होसक्ता वो लक्षण प्रमाण है जो सब दोषसे रहित होय जैसे गौका लक्षण सींग सास्ना आदि वाली गौ विचारो इसमें कोई दोष नहीं आकाशमें एक गुण शब्द वायुमें दो शब्द स्पर्श तेजमें तीन शब्द स्पर्श रूप जलमें चार शब्द स्पर्श रूप रस पृथिवीमें पांच शब्द स्पर्श रूप रस गंध पंचीकृत पृथिवी आदिसे ब्रह्माण्ड हुआ ब्रह्माण्डमें चौदह लोक भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य। ये सात ऊपर ऊपरके लोकहैं और तल। वितल। सुतल। तलातल। महातल। रसातल। पाताल। ये सात ७ नीचे नीचेके लोकहैं ब्रह्माण्डसे मनु और शतरूपा हुये ब्रह्माण्डमें जो पृथिवी उससे औषधि हुई औषधिसे अन्न माता पिताके खायेहुयेका परिणाम जो शोणित उससे स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ शरीर चार प्रकारके हैं मनुष्यादिके शरीर जरायुज अर्थात् जरायुसे उत्पन्न हुये पक्षी नागादिके शरीर अण्डज अर्थात् अण्डेसे उत्पन्नहुये लीख जूं आदिके शरीर स्वेदज अर्थात् पसीने से उत्पन्न हुये तृण वृक्षादि उद्भिज्ज पृथिवीकूं भेदनकरके उत्पन्न हुये और मनुसेलेके सनन्दनादि शरीर इन चारोंसे पृथक्हैं वे मानवी सृष्टि में हैं सुना जाताहै ये ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुये हैं यह स्थूल शरीर समष्टि व्यष्टि भेद करके दो प्रकारका है पंचीकृत् पंच महाभूत और उनके

कार्य्य ब्रह्माण्डके भीतर जो पंच भूतोंका कार्य स्थूल-शरीरादिका समुदाय यह सब समष्टि और पृथक् पृथक् स्थूल शरीर व्यष्टि इस थूल समष्टि करके उपहित वही मायोपहित चैतन्य विराट् कहाजाता है और स्थूल व्यष्टि करके उपहित वही अविद्योपहित चैतन्य विश्व कहाजाताहै समष्टि व्यष्टि कूं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष वनवृक्षवत् तादात्म्य होनेसे उन करके उपहित विराट् विश्वकीभी एकताहै इस जीवकी प्रसिद्ध तीन अवस्थाहैं प्रसिद्ध लिखनेसे यह अभिप्राय है कोई मरण और मूर्च्छा ये दो अवस्था और भी कहतेहैं परन्तु प्रसिद्ध तीन अवस्थाहैं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति जाग्रत्का अर्थ जाननेके लिये प्रथम इन्द्रिय और अन्तःकरण और शब्दादि विषय और बोलनादि क्रिया और संकल्पादि अन्तःकरणके धर्म और दिक् आदि देवताओंके सहित सबकूं पृथक् पृथक् लिखतेहैं यह संकेत याद रखना चाहिये एकका अंक जिसके आगे उसकूं इन्द्रिय वा अन्तःकरण जानना इसीकूं अध्यात्म कहतेहैं और दोका अंक जिसके आगे उसकूं ज्ञानेन्द्रियका विषय वा कर्मेन्द्रियकी क्रिया वा अंतःकरणका धर्म जानना इसीकूं अधिभूत कहते हैं और तीनका अंक जिसके आगे उसकूं देवता जानना इसीकूं अधिदैव कहतेहैं जिस इन्द्रिय और मनादिके आगे विषय क्रिया धर्मदेवता

लिखेहैं उसी उस इन्द्रियमनादिके विषय क्रिया धर्म देवता
हैं शब्दादि पांचकूं विषय और बोलनादि पांचकूं क्रियाऔर
संकल्पादि चारकूं धर्म बोलतेहैं श्रोत्राऽऽदि इन्द्रिय सूक्ष्महैं
कान नासिकादि जो स्थूल शरीरमें दीखते हैं ये उनका
आश्रयहैं अर्थात् उनमें रहतेहैं बहुत करके तो बहिर्मुख
हैं कभी भीतरका भी कुछ ज्ञान होजाताहै श्रोत्र कानमें
रहता है बहुत करके तो बाहरके शब्द कूं सुनता है कभी
कान बन्द करनेसे कुछ शब्द भीतरकाभी सुनाजाता है
श्रोत्र करके सुना जाता है जो शब्द सो दो प्रकारका है
एक शास्त्रादिका दूसरा भेरी आदिका सो पांचोंभूतोंमें
रहता है २ दिक् ३ त्वक् सारे शरीरमें रहता है
बहुत करके तो बाहरके शीत कोमलादि कूं विषय कर-
ताहै कभी उष्णादि वस्तुके खानेसे भीतरके स्पर्शका ज्ञान
होताहै १ त्वक् करके जो स्पर्श कियाजाताहै सो स्पर्श
पांच प्रकारका है शीत गर्म न शीत न गर्म कठिन कोमल
शीत स्पर्श जलमें गर्म स्पर्शतेजमें न शीत न गर्म पृथिवी
वायुमें कठिन कोमल पृथिवीमें और पृथिवीके कार्य वस्त्रा-
दिमें रहते हैं २ वायु ३ चक्षु नेत्रोंमें कृष्ण तारेके अग्र-
भागमें रहता है बहुत करके तो बाहरके रक्त पीतादि
रूपकूं देखता है कभी नेत्रके मीचनेमें भीतर-
का भी तम प्रतीत होताहै १ चक्षु करके जो रूप

देखनेमें आताहै सो सात प्रकारकाहै शुक्ल नील पीत रक्त हरित कपिश चित्र भेद करके सो पृथिवीमें तो सात प्रकारका और जलमें अभास्वर शुक्ल और तेजमें भास्वर शुक्ल रहताहै २ सूर्य ३ रसना जीभके अग्र भागमें रहता है बहुत करके तो बाहरके मधुरादि रस अनुभव करताहै कभी डकार आनेसे भीतरके रसका भी ज्ञान हो जाता है १ रसना करके जो रसका अनुभव होताहै सो ६ प्रकारका है मधुर अम्ल लवण कटु कषाय पित्त भेद करके सो पृथिवीमें तो ६ प्रकारका और जलमें केवल मधुर रहताहै२वरुण ३ घ्राण नाकके दोस्वर उनके अग्र-भागमें दोके बीचमें रहताहै बहुत करके तो बाहरके गन्ध-कूं ग्रहण करता है कभी डकार आनेसे भीतरके गन्ध-काभी ज्ञान होजाताहै १ घ्राणकरके जो गन्धका ग्रहण किया जाता है सो दो प्रकारका है सुगन्ध दुर्गंध सो पृथि-वीमें रहता है २ पृथिवी ३ यहांतक ज्ञानेन्द्रियोंका निरू-पण किया वाक् जीभमें रहताहै १ बोलना २ अग्नि ३ पाणि हाथोंमे रहता है १ लेना देना २ इन्द्र ३ पाद चरणोंमें रहता है १ चलना फिरना २ विष्णु ३ उपस्थ मूत्र करनेका जो शरीरमें चिह्न उसमें रहता है १ मैथुन मूत्रत्याग २ प्रजापति ३ वायु मल त्याग करनेका जो शरीरमें चिह्न उसमें रहताहै १ मलका त्याग करना २

मृत्यु ३ यहांतक कर्मेन्द्रियोंका निरूपण किया अन्तः-
करण हृदय गोलकमें रहताहै सो वृत्तिभेद करके चारप्र-
कारकाहै मन बुद्धि चित्त अहंकार मन १ संकल्प विकल्प
मनोराज्याधि २ चन्द्र ३ बुद्धि १ पदार्थोंका निश्चय
करना २ बृहस्पति ३ चित्त १ चिन्तवन करना २ क्षेत्रज्ञ३
अहंकार १ यह मैंने किया यह मेरे करने योग्यहै २ रुद्र
३ अमान अदम्भ अहिंसा क्षमा आर्जव वैराग्य शम दम
मुक्तिकी इच्छा संतोष औदार्यादि ऐसी ऐसी और भी
अन्तःकरणकी सत्वगुणी वृत्ति हैं और तृष्णा दम्भ लोभ
अहंकार अशम भोगोंकी इच्छा चपलता अभिमान
रागादि ऐसी ऐसी औरभी बहुत अन्तःकरणकी रजोगु-
णीवृत्ती हैं और निद्रा आलस्य प्रमाद मोहादि अन्तः करण-
की तमोगुणी हैं अर्थात् यह सब अन्तःकरणका धर्म है
जो संकल्प विकल्पवाली वृत्ति सो मनकी और निश्चय-
वाली बुद्धिकी और अनुसन्धानवाली चित्तकी और अभि-
मानवाली अहंकारकी वृत्ति, सत्वगुणीवृत्तिसे पुण्यकी
उत्पत्ति होतीहै रजोगुणी वृत्तिसे पापकी उत्पत्ति होती
है तमोगुणी वृत्तिसे मूर्खता बढ़तीहै वृथा अवस्था व्यतीत
होतीहै उससे न कुछ इस लोकमें प्राप्ति न कुछ परलोकमें
प्राप्ति है पीछे तमोगुणी वृत्ति बहुत दुःखकी हेतु है ॥

भूत	ज्ञानेंद्रिय	विषय	ज्ञानेंद्रियों-के देवता	कर्मेंद्रिय	क्रिया	कर्मेंद्रियों-के देवता
आकाश	श्रोत्र	शब्द	दिक्	वाक्	बोलना	अग्नि
वायु	त्वक्	स्पर्श	वायु	पाणि	लेना देना	इन्द्र
तेज	चक्षु	रूप	सूर्य	पद	चलना	विष्णु
जल	रसना	रस	वरुण	उपस्थ	मैथुनादि	प्रजापति
पृथ्वी	घ्राण	गंध	पृथ्वी	गुदा	मलत्याग	मृत्यु

श्रोत्रादि इन्द्रियोंके जो देवतादिक आदि ।

इन करके युक्त श्रोत्रादि करके जो अपने अपने विषयोंका अनुभव होना सो जाग्रत अवस्था यह जो जाग्रत अवस्था और यह स्थूल शरीर मन इन्द्रियादिका आश्रय इन दोनोंका जो अभिमानी जीव सो विश्व कहा जाताहै प्रथम भी विश्व विराट्की एकता लिख आयेहैं इसलिये भेदकी निवृत्तिके लिये विश्वकूं विराट्रूप करके देखे १ जाग्रत अवस्थामें जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपराम हुये सन्ते और बाहर श्रोत्रादि इन्द्रियोंका उपराम हुये सन्ते जाग्रत अवस्थामें जो देखा और सुना उनहीं संस्कार करके केवल अन्तःकरण करके जो निद्रामें प्रपंचकी प्रतीत सोई स्वप्न अवस्था वोही जाग्रत अवस्थाका अभिमानी जो विश्व सोई स्वप्न अवस्था और सूक्ष्म शरीरका अभिमानी

हुआ तैजस कहाजाता है तैजस हिरण्यगर्भकी एकता है तैजसकूं हिरण्यगर्भरूप करके देखे २ जाग्रत स्वप्नमें जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपराम हुये सन्ते स्थूल सूक्ष्म शरीरोंका जो अभिमान उसके निवृत्ति होनेसे बुद्धिका कारणात्मामें जो स्थित होना सो सुषुप्ति अवस्था मैंने न कुछ जाना सुख करके मैंने निद्राका अनुभव किया जो जाग्रत अवस्थामें जिस अवस्थाकी व्यवस्था कहती है वोही सुषुप्ति है तात्पर्य जिस अवस्थामें बुद्ध्यादि सब लय होजाते हैं वोही सुषुप्ति है वोही स्वप्न अवस्थाका अभिमानी जो तैजस जो यह सोई सुषुप्ति अवस्था और कारणशरीरका अभिमानी हुआ प्राज्ञ कहा जाता है प्राज्ञ ईश्वरकी एकता है प्राज्ञकूं ईश्वररूप करकेदेखे यहही प्राज्ञ तीनों शरीर और तीनौ अवस्थाका अभिमान छोड़कर शुद्ध परमात्मा होजाताहै जो यह उपासनाकरे मैं विराट् वा हिरण्यगर्भ वा ईश्वर वा शुद्धब्रह्महूं इस उपासना करके वैसाही वैसा फल होताहै अर्थात् विराटादिकी उपासना करनेसे विराट् आदि होजाताहै ऐसी ऐसी उपासना उपनिषद् आदिमें भलेप्रकार फलके सहित लिखी हैं और भी प्रणवआदि उपासनाहैं शुद्ध ब्रह्मसे लेकर पाषाण आदि मूर्त्ति पर्य्यंत उपासनाहैं जैसीअपनी सामर्थ्य जाने भेदउपासना वा अभेदउपासना वेद: शास्त्रोंमें से निश्चय करके करे परमेश्वरकी जैसी उपासना करैगा वैसाही वैसा फल होवेगा मुख्य अभेद उपासना

शुद्धब्रह्मकीहै और ईश्वर हिरण्यगर्भ विराट्की अभेद उपासना और विष्णु शिवादि राम कृष्णादिकी भेद उपासना और नामोच्चारणादि पाषाणादिमूर्त्तियोंकी अर्चनादि ये सब उपासना उत्तरोत्तर गौण हैं जो अभेदउपासना शुद्ध ब्रह्मकी न होसके तो भेदउपासना श्रीकृष्णचन्द्र महाराजादिकी करनेसे ज्ञानद्वारा मुक्तिमें सन्देह नहीं है जैसे कोई सिंह किसी पुरुषकी छायाकूं देखकर दौड़ा उस छायासे पुरुषकी प्राप्ति होगई इसीप्रकार मणिप्रभासे आदि लेकर और भी बहुत दृष्टान्त हैं, अष्टावक्रजीका यह वाक्य है कि जिसकी जो मतिहै उसकी वैसेही गति होगी अर्थात् 'दासोऽहम्' जिसकी मतिहै वो दासही है और 'ब्रह्माहमस्मि' यह जिसकी मतिहै वो ब्रह्मही है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इस श्रुति से इसप्रकार मायोपहित ब्रह्मका तटस्थ लक्षण निरूपण किया इसीकूं अध्यारोप कहतेहैं अब इसका अपवाद लिखते हैं अधिष्ठानमें भ्रान्ती करके

टी०—जिसमें जो वस्तु कल्पित हो जैसे रज्जुमें सर्प॥

सू०—जो प्रतीत होना उस भ्रान्त कूं अधिष्ठान से व्यतिरेक करके भ्रान्तका अभाव निश्चय करना जैसे शुक्ति में रजत की भ्रान्ति प्रतीत होती है शुक्तिका रजतसे व्यतिरेक करके यो रजत नहीं है शुक्ति है यो जो रजतका अभाव निश्चय करना इसीकूं अपबाद बाध विलापन भी कहते हैं सो बाध तीन प्रकारका है, शास्त्र करके युक्ति

करके प्रत्यक्ष करके वेद कहते हैं यो स्थूल सूक्ष्म प्रपंच नहीं है इस जगत् भ्रान्ति रूप में ब्रह्म सें पृथक् कुछ नहीं है एक शुद्ध ब्रह्म है इस प्रकार शास्त्र करके प्रपंच से ब्रह्मका व्यतिरेक करके प्रपंचका अभाव निश्चय करना यो शास्त्र करके जगत्का बाधहै १ और घटसे मृत्तिकाका व्यतिरेककरके घटका अभाव निश्चय करना इसी प्रकार ब्रह्मसे व्यतिरेक करके सारे प्रपञ्चका अभाव निश्चय करना और जो देखने में आताहै इसकूं भ्रान्ति निश्चय करके ब्रह्ममात्र निश्चय करना यो युक्ति करके जगत्का बाध है यो जगत् सब ब्रह्महै इसकूं इसप्रकार जानना चाहिये ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं सबमें पांच वस्तु हैं भान होता है प्यारा है नाम रूप संस्कृत में अस्ति भ्रान्ति प्रिय नाम रूप से सस्ता बोलते हैं प्रथम के तीन अंश सच्चिदानन्द ब्रह्म के हैं पदार्थ घटादि के नाश हुये भी नहीं नाश होतेहैं और नामरूप ये दो मायाके हैं माया कूं मिथ्या होनेसे यो कार्यभी उसका नामरूप दोनों अंश नाश होजाते हैं अन्वय व्यतिरेक करके ब्रह्ममात्र निश्चय किया जाता है सोई लिखते हैं जैसे एकघट पदार्थ है है भान होताहै प्याराहै ये तीन अंश उसमें ब्रह्मके हैं और नाम घट और रूपकाला लाल गोलाकारादि ये दो मायाके अंशहैं है भान होताहै प्याराहै यो ब्रह्मका घटमें अन्वय है फिर घट फूट गया मायाके दोनों अंश-नामरूप जाते रहे घट में माया के दोनों अंशोंका व्य-

तिरेक है और ब्रह्मका फिर भी अन्वय है कैसे टूक हैं भान होतेहैं, प्यारे हैं हैं भान होतेहैं, प्यारे हैं यो ब्रह्मके तीनों अंश वैसेहीहैं फिर उन टूकों का काल पाकर चूर्ण होगया मायाके जो अंश नाम रूप थे वे दोनों नाश होगये मायाके दोनों अंशोंका चूरण में व्यतिरेक है और ब्रह्म-का अन्वय है चूरण है भान होता है प्यारा है फिर वो चूरण भी काल पाकर नाश होगया नामरूप माया के दोनों अंश नाश होगये चूरणमें मायाके अंशोंका व्यतिरे-कहै और ब्रह्मका अन्वय है कैसे चूरण का अभावहै भान होताहै प्याराहै ये तीनों अंश जैसे प्रथम घटमें थे वैसेही घटके अभावमें हैं इसी प्रकार सब पदार्थोंमें अन्वय व्यति-रेक करके ब्रह्म निश्चय करना तीनों अवस्था में भी अन्वय व्यतिरेक जाना चाहिये जाग्रत अवस्था में स्वप्न सुषुप्ति का व्यतिरेक है आत्मा का अन्वय है स्वप्न अवस्था में जाग्रत सुषुप्तिका व्यतिरेक है आत्मा का अन्वय है सुषु-प्ति अवस्थामें जाग्रत स्वप्न का व्यतिरेकहै आत्मा का अ-न्वय है तुर्या अवस्था में जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का व्यति-रक है आत्माका अन्वय है इसीप्रकार बुद्धिमान सब ज-गह विचार कर प्रसंग यों था युक्ति करके भी जगत् का बाधहै उसका यो क्रमहै समस्त स्थूल प्रपञ्च कूं स्थूल महाभूतोंमें मिलादे यो निश्चय करे पञ्चभूतों से पृथक् कुछ नहीं. फिर स्थूल भूतों कूं और सूक्ष्म पंच भूतोंके कार्य

इन्द्रिय मनादिकूं पंच सूक्ष्म भूतों में मिलादे फिर पृथिवी कूं जलमें जलकूं तेजमें तेजकूंवायु में वायुकूं आकाशमें आकाश कूं अहंकारमें अहंकार कूं महत्तत्त्वमें महत्तत्त्व कूं अज्ञान में अज्ञान मिथ्या है जैसे शुक्ति में रजत फिर अज्ञानकूं शुद्धचैतन्य में मिलादे फिर सदा अभ्यास केवल करके योंही चिंतवन करता रहे मैं शुद्धब्रह्म सच्चिदानन्द परिपूर्ण नित्यमुक्त हूं जो कभी व्यवहारदशामें प्रपंच प्रतीत हो तो वैसेही अन्वय व्यतिरेक करके चैतन्य से पृथक् कुछ न जाने जैसे किसी मृगकूं रेती में यों भ्रान्ति हुई यो जल है वहां गया नेत्र सींग पैरसे भले प्रकार निश्चय किया कि यो जल नहींहै फिर मृग उसीजगह आनकर जो देखताहै तो वहां फिरभी भ्रान्ति से जल प्रतीत होताहै परन्तु फिर यो जानताहै कि यो जल नहा है भ्रान्ति है जो पशुकी यो बुद्धि है कि उस मृगतृष्णा में फिर नहीं प्रवृत्त होताहै बुद्धिमान कि जिसने श्रुतिस्मृति युक्ति अनुभव करके ब्रह्मका निश्चय किया है वो कैसे संसार कूं सत्य जानेगा संसार का मिथ्याभ्यास भी उसकूं तबतक है कि जबतक प्रारब्ध कर्मका रचा हुआ जो शरीर नाश नहीं होता है पीछे उसके मुक्तरूप है युक्ति करके संसार का बाध योंही है कि संसार कूं मिथ्या समझ लेना २ और मैं ब्रह्म हूं यो महावाक्य श्रवण करके जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान और ब्रह्मकू साक्षात् करके अज्ञान-

की जो निवृत्ति सो प्रत्यक्ष बाध है ऐसें ३ तीन प्रकार करके संसार का बाध करना इसकूं अपवाद कहते हैं अध्यारोप अपवाद करके तत् त्वम् पदार्थों का साधन भी हुआहै सोई दिखाते हैं मायासे लगाकर स्थूल समष्टि प्रपंच जड १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और दोनों का आधार अनुपहित चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनों का तप्तलोहेके पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो तत् पदका वाच्यार्थ है और पृथक् जो अखण्ड चैतन्य सो तत् पदका लक्ष्यार्थ है और अविद्यासे लगाकर स्थूल व्यष्टि प्रपंच जड १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और इन दोनोंका आधार अनुपहित अखण्ड चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनोंका तप्तलोहेके पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो त्वम् पदका वाच्यार्थ है और पृथक् अखंड चैतन्य त्वम् पदका लक्ष्यार्थ है इन दोनों तत् त्वम् पदका लक्ष्यार्थ कूं ग्रहणकरके और वाच्यार्थ कूं मिथ्या जानकर वाच्यार्थ का त्याग करके तीन सम्बन्ध के सहित जहदजहद लक्षण करके सो यो देवदत्त है इस लौकिक वाक्यवत् 'तत्त्वमसि' यो महावाक्य अखंडार्थ का बोधकहै तीन सम्बन्धों का अर्थ विना कुछ शास्त्र के पढ़ेहुए भले प्रकार नहीं जाना जाता है न भले प्रकार भाषामें लिखाजाताहै इसलिये कुछ तात्पर्य लिखे देतेहैं। सामानाधिकरण्य १ विशेषण विशेष्यभाव २ लक्ष्यलक्षणभाव ३ स-

मानहैं अधिकरण जिसका सो सामानाधिकरण्य जो जि-
समें रहे उसकूं अधिकरणकहते हैं।किसी ने कहा सो यो देव-
दत्त है सो अर्थात् काशीमें तुमने हमने १६ वर्षकी अवस्था
गृहस्थाश्रम में जोदेखाथा सोई यो अर्थात् अब हरिद्वार
में ३० वर्षकी अवस्थामें जो दीखताहै सो यो देवदत्तहै पूर्व
काशी १६ वर्षकी अवस्थादि का और हरिद्वार ३० वर्षकी
अवस्थादि का त्याग करके केवल देवदत्तके पिण्ड मात्रमें
दृष्टि करके यो अर्थ बैठता है कि सो यो देवदत्तहै।कहे हुए
अर्थकूं कुछ त्यागदेना कुछ रखलेना इसकूं जहद्जहद् ल-
क्षण कहतेहैं सो यो देवदत्त है इसवाक्यका अर्थ जहद्जहद्
लक्षणा करके होसक्ताहै जैसे इस वाक्यमें 'जहद्जहद् लक्ष-
णा' है ऐसे और वाक्यों में भी किसीमें 'जहद्'लक्षणा कि-
सीमें 'अजहद्' लक्षणाहै तात्पर्य्य जिस वाक्य का अर्थ बु-
द्धिमें न बैठता हो कुछ विरुद्ध प्रतीत होता हो तो उस वा-
क्य का अर्थ लक्षणा शक्ति व्यंजनादि करके निश्चय करते
हैं उन वाक्योंके बहुत उदाहरण लिखनेमें विस्तार होताहै
इसलिये थोडेसे उदाहरण लिखत हैं और उनके लिखने-
का यहां कुछ प्रयोजन भी नहीं है जहद् लक्षणा वह है कि
कहे हुये वाक्यार्थ का त्याग करके और बनाकर लक्षणा
करनी जैसे किसी ने कहा गंगा में गांवहै वहां से दूध ले
आओ उसने विचारा गंगाजी में गांवका होना नहीं बनता
इस हेतुसे गंगाजीके तीरके गांवसे दूधले आया तात्पर्य क-

हने वाले का तीरमें था जहत् लक्षणा से यो अर्थ बनसक्ता है, अजहत् लक्षणा वह है कि कहे हुए वाक्यार्थ कूं ग्रहण करके और भी कुछ अर्थ बनाकर लक्षणा करनी जैसे; किसीने कहा कि दूधकी कौवन से रक्षा करते रहना उसने अजहत् लक्षण करके कौवन से भी रक्षाकरी औरों-से भी रक्षाकरी क्योंकि तात्पर्य दूधकी रक्षामें था, जैसे पंकजका अर्थ यों है कि जो कीचसे उत्पन्नहो सो पंकज विचारो कीचसे बहुत वस्तु कसेरू आदि उत्पन्न होतेहैं परन्तु पंकज की शक्ति कमल में हीहै, वाक्यार्थके तात्पर्यकूं समझना यो व्यंजना है जैसे किसी स्त्रीका पुरुष विदेशकूं जाता था स्त्रीने चलते समय प्रार्थना करी कि जहां आपका जानाहो उसी जगह मेराभी जन्महोवे अर्थात् आपके जाते ही मेरे प्राण छूट जावेंगे, प्रसंगसामानाधिकरण्य कथासो सुनो सो और योपद इन दोनों का जसे देवदत्तका पिण्ड अधिकरण है ऐसे तत् त्वम् इन पदोंका शुद्ध चैतन्य अधिकरण है। तत् त्वम् पदोंका सामानाधिकरण्य संबन्ध है जैसे सो यो ऐसा कहो वा यो सो ऐसा कहो ऐसे तत् त्वम् ऐसा कहो वा त्वम् तत् ऐसा कहो यो तत् त्वम् पदार्थों का विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्धहै, जैसे सो यो इन शब्दोंका और इनके अर्थोंका लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्धहै सो यो ये दोनों पद तो लक्षणहैं और इन लक्षणोंसे जो लखाजावे सो लक्ष्य देवदत्त का पिण्डहै ऐसे तत् त्वम् पदोंका

और उनके अर्थोंका लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्धहै । तत् त्वम् ये पद तो लक्षण हैं और इन लक्षणों से जो लखा जावे सो लक्ष्य एक शुद्ध चैतन्यहै इस प्रकार तीन सम्बन्ध करके अखण्डार्थ का बोध होताहै जीवकी जो उपाधि अविद्या अल्पज्ञतादि और ईश्वरकी उपाधि माया सर्वज्ञतादि इन दोनों उपाधियों का जहदजहद् लक्षणासे त्याग करके तात्पर्य तत् त्वम् पदोंके वाच्यार्थ का त्याग करके लक्ष्यार्थ का ग्रहण करके केवल एक शुद्ध चैतन्यमें लक्षणा करनी तब 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य का अथ अखण्डार्थ निश्चय होताहै अखंडार्थ जिसकूं कहतेहैं सुनो स्वगत १ जैसे वृक्षमें पत्र पुष्पादि का भेद और सजातीय २ जैसे अनार आम्रादि का भेद और विजातीय ३ जैसे वृक्ष और पाषाणादि का भेद इन तीन भेद करके जो रहित सो अखण्ड अथवा देश काल वस्तु करके परिछिन्न न हो सो अखण्ड सारे व्यापक होनेसे तो ब्रह्म देशपरिछिन्न नहीं और नित्य होनेसे कालपरिच्छिन्न नहीं और सबका आत्माहोनेसे वस्तुपरिच्छिन्न नहीं इस शरीरमें सच्चिदानन्द भान होताहै वोही ब्रह्महै और जिसकूं ब्रह्म कहतेहैं वोहीसच्चिदानन्दहै जब ऐसा ज्ञान हुआ तब त्वम् पद का अर्थ जो जीव समझ रखा था वो उसी समय जाता रहताहै और तत् पदका अर्थ जो परोक्ष था तोभी उसी समय अपरोक्ष होजाताहै फिर इस ज्ञानसे जो होताहै सो सुनो—जो प्रथम त्वम्

पदका अर्थ जीव समझ रक्खा था सोई अपरोक्ष परमानन्द रूप करके शेष रहजाता है इस प्रकार 'तत्त्वमसि' जो महावाक्यादि उनका अर्थ श्रवण करने से और मनन निदिध्यासन करनेसे जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान उस ज्ञान करके अज्ञान की जो निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति इसीका नाम मोक्ष है ॥

इति श्रीद्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

'कर्मकाण्डी और उपासना वाले स्वर्ग वैकुण्ठादि की प्राप्तिकूं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य सायुज्य नाम करके मुक्ति कहतेहैं सो नाममात्र मुक्तिहै अनित्य होनेसे साक्षात् मुक्ति नहीं जैसे किसी पुरुषकूं कहना कि यो पुरुष सिंह है वो पुरुष साक्षात् सिंह नहीं उसमें सिंहकेसे गुणहैं ऐसे साक्षात् मुक्तिमें जो गुण दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ये दोनों उनमें भी थोडे थोडे हैं दूसरे अध्यायके अन्तमें जो मुक्ति कही है सो मुक्ति दोप्रकार की है जीवन्मुक्ति १ विदेह मुक्ति २ जीवन्मुक्ति तीन प्रकारकी है श्रेष्ठ १ मध्यम २ कनिष्ठ ३ जीवते हुए उस आनन्दकूं सदा प्राप्त रहना अर्थात् स्वभाव करके निर्विकल्प समाधि रहनी श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति १ प्रयत्न करके बहिर्मुख अन्तः-

करण की वृत्तियों कूं निरोध करना मध्यम जीवन्मुक्ति २ यद्यपि दुःख सुखादि अन्तःकरणके धर्म होनेसे आत्माके साथ उनका सम्बन्ध नहींहै। यो विचारभी है तो भी दुःखादि के संबंधकरके अन्तःकरणका व्याकुल होजाना यो कनिष्ठ जीवन्मुक्ति ३ देह पातके पीछे उस आनन्दकूं प्राप्त होना विदेह मुक्ति, श्रेष्ठ जीवन्मुक्तिका यो नियम नहीं कि सब ज्ञानियोंकूं श्रे जीवन्मुक्तिहो जैसे ओषधि करनेसे रोगकी शान्ति होतीहै ऐसे प्रयत्न करनेसे श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति भी संपादन होसकी है परंतु कुछ नियम नहीं कि औषधिकरनेसे नियम करके रोगजाता रहता है पुरुषार्थवादी तो यों हीं कहते हैं कि प्रयत्न मुख्यहै जो श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति किसी प्रतिबन्ध करके सम्पादन न होसके तो कुछ विदेह मुक्तिमें सन्देह नहीं इस बातकूं सिद्ध करते हैं । ज्ञानकी ७ भूमिकाहैं तीन प्रथमकी ज्ञानकी साधनभूमिका हैं इसलिये वेभी ज्ञानकी भूमिका कही जातीहैं चौथीमें अपरोक्षज्ञान होता है पिछिली तीन जीवन्मुक्ति भूमिका हैं प्रथम का लक्षण योहै शौचस्नानादि आचार गंगाजीसे आदि लेकर तीर्थोंका सेवन विष्णु शिवादिकी पाषाणादि मूर्तियों की पूजा अश्वमेध यज्ञसे आदि लेकर यथाशक्ति ब्राह्मण अतिथि अभ्यागतोंकूं अन्न वस्त्रादि देने ऐसे ऐसे और भी बहुत कर्म हैं यो प्रथम भूमिका १ सगुण परमेश्वर के गुणानुवाद सुनकर परमेश्वरमें अनुराग होना और परमे-

श्वरके भक्त जो साधु ब्राह्मण उनमें प्रीति होनी और मन,
वाणी, शरीर, धनसे उनका सत्कार करना जो कदाचित्
साधु अपने घर चले आवें तो मनकूं आनन्द होना यो जा-
नना हमारा बड़ा भाग्य है यो मनसे सत्कार है और वा-
णीसे ऐसा बोलना महाराज आपका आना बहुत सुन्दर
हुआ आप जंगम तीर्थहो हमारे पवित्र करनेके लिये आप
आयेहो। और शरीर से हाथ जोड़कर खड़ा होजाना। चरण
सेवासे आदि लेकर टहल करनी अथवा और जगह म-
हात्मा टहर रहे हों वहां जाकर सेवा करनी और धनसे
यथाशक्ति अन्न वस्त्रादि देने और नित्यानित्य वस्तुका
विचारना ऐसे ऐसे कर्मोंसे आदि लेकर और भी बहुत
कर्म हैं यो दूसरी भूमिका २ संसार के पदार्थोंकूं दुःख
रूप अनित्य जानकर उनसे वैराग्य होना जैसा श्रीरा-
मचन्द्रजीकूं वैराग्य हुआहै वासिष्ठग्रन्थमें वो कथा
प्रथमही वैराग्यप्रकरणमें प्रसिद्धहै और साधनचतुष्टयसं-
पन्न होकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण करना यो तीसरी भू-
मिका ३ शुक्तिमें रजतवत् संसारकूं मिथ्या जानकर अ-
पने निज स्वरूप का बोध होजाना कि मैं योहूं चौर्थी
भूमिका योही विदेह मुक्तिमें हेतुहै चोथी भूमिकाव
लेका लक्षण योहै कि जैसे कोई पुरुष समुद्र के तीर
खड़ाहै जो जलकी तरफकूं देखताहै तो जलहीजल दीख
ताहै और जब पृथिवीकूं देखताहै तब मन्दिर वृक्षादिही

दीखते हैं ऐसे जब वो पुरुष अपने स्वरूपका अनुसंधान करताहै तब संसारका अभाव और अपना स्वरूप साक्षात् प्रतीत होताहै और व्यवहार के समय संसारके दुःख सुख शोक मोहादि जैसे पहले थे वैसेही भुने अन्नवत् प्रतीत होतेहैं जैसे भुना अन्न भूख दूर करनेकूं समर्थहै जमनेकूं समर्थ नहीं ऐसे उस ज्ञानीकूं व्यवहार सुखदुःखादि का हेतु है परन्तु जन्मका हेतु नहा आर अज्ञानीकी बराबर उसकूं दुःख सुखभी नहीं होते इस बातकूं भी अभी आगे दृष्टांत देकर सिद्ध करैंगे चौथी भूमिकामें शरीर या तो चाण्डालके घरमें या काशीमें छूटो आनन्द पूर्वक छूटो या मूर्च्छारोग होकर लोटते पोटते छूटो मुक्तिमें सन्देह नहीं वो मुक्त उसी समय होगया जिससमय उसको ज्ञान हुआ।मूर्च्छादि होनेसे ज्ञानका नाश नहीं होता।जैसे विद्याकूं स्वप्न सुषुप्ति मूर्च्छादिमें भूलभी जाताहै परन्तु कुछ अगले दिन नहीं बढ़ता ४ पांचवीं भूमिका का लक्षण योंहै कि जैसे कोई पावकोश समुद्र में आधे शरीर जलम खड़ाहो उसकूं बहुत विचारनेसे समुद्रके तीरके मन्दिर वृक्षादि देखा करते हैं वैसे उसकूं संसारका व्यवहार बहुत किसीके सुनने देखनेसे प्रतीत होताहै ५ छठीभूमिकाम गलेतक जलकी कल्पना करलेनी ६ सातवीं भूमिकामें जलमें प्रवेश होजाना सातवीं भूमिकावालेका शरीर हृदय बीसदिन रहता है क्योंकि भोजनादिका अभाव होजाता

है ७ चौथी भूमिका वालेसें लेकर सातवीं तक एकसे एक सिवाय ब्रह्मवित् कहे जाते हैं: ब्रह्मवित्४: ब्रह्मविद्वर ५ ब्रह्मविद्वरीयान् ६ ब्रह्मविद्वरिष्ठ ७ मूर्ख योंहीं कहते हैं कि जैसा हमने पांचवीं छठीं सातवीं भूमिका का लक्षण लिखाहै ऐसे ज्ञानी होते हैं और चाथा भूमिकावालेमें वहुत तर्क करतेहैं इनकी पूर्व पक्षकी तर्कोंका खण्डन वेदान्तशास्त्रमें वहुत लिखा है कुछ एक लेशमात्र यहांभी लिखतेहैं। शंकाः—कि जा खावे पीवे नहीं और शरीर इन्द्रियादि करके चेष्टा न करताहो सो ज्ञानी है। उत्तरः—ज्ञान क्या हुवा रोग हुआ ऐसे तो रोगी होते हैं रोगियोंकूं भी ज्ञानी कहा चाहिये। शंकाः—जिसकूं दुःख सुख न प्रतीत होताहो तो ज्ञानीहै। उत्तर—दुःख सुखका अभाव जड़ पदार्थोंमें होताहै वे ज्ञानी हैं। शंकाः—संसार का अनुभव न होना यो ज्ञान का लक्षण है। उत्तरः—संसारका तो सुषुप्ति मूर्च्छा प्रलयादिमें भी अनुभव नहीं होता वहांभी तो संसारका वाधहै। प्रश्न—फिर संसारका क्या वाध है और क्या ज्ञानका लक्षणहै। उत्तरः—संसार का यो ही वाधहै कि जो दूसरे अध्यायमें तीन प्रकार का वाध लिख आये हैं और ज्ञान का भी योही लक्षणहै कि जबतक जो शरीर प्रारब्ध कर्मका रचा हुआ नष्ट नहीं होता तबतक संसारकूं मिथ्या समझना तात्पर्य्य जबतक संसारमें स्वरूपसें मर्दन नही होसका क्योंकि मिथ्या पदार्थकूं मिथ्या जानने

से उसका अभाव नहींहोता जैसे बाजीगर के पदार्थ मिथ्या जाननेसे स्वरूप करके मर्दन नहीं होते इस प्रकार यह संसार रहता है परन्तु देहपातके पीछे स्वरूपसे भी मर्दन होताहै इसमें वेद प्रमाण है अन्यथा वसिष्ठादि ब्रह्मज्ञानी थे इसमें क्या प्रमाण है। शंकाः—ज्ञात तो होगया फिर प्रारब्ध कर्म्म का फल दुःखादि क्यों न नाश हुआ। उत्तरः—तीरनें पुरुष कूं भेदन तो करदिया आगे क्यों चला और दूसरे कुम्हार ने बर्तन उतारने के लिये चाक घुमाया बरतन तो उतार लिया फिर चाक क्यों घूमता है। शंकाः—ज्ञाननें संसार कूं स्वरूप से और प्रारब्धकर्म्म कूं क्यों न नाश किया। उत्तरः—प्रारब्धकर्म्म और यो संसार मिथ्या भास झुरदेकी नाईं कुछ ज्ञानके विरोध नहीं प्रत्युत ज्ञान कूं उत्साह बढानेवालेहैं जैसे किसी पुरुषकी मारी हुई हजारों लाशें पड़ीहों वो शूर उनको देख देख आनन्द होताहै। शंकाः—जो ज्ञानी पूर्ववत् संसार को भोग भोगता रहा तो ज्ञानी अज्ञानी में क्या भेद हुआ। उत्तरः—ज्ञानी रागपूर्वक संसारके भोग नहीं भोक्ता जैसे किसीके शिरपर कोई बेगार रख दे तो क्या बेगारके उठानेमें उसको उत्साह है। शंकाः—बेगारी कूं तो दुःख होताहै जो ज्ञानी कूं भी दुःख हुआ तो ज्ञानका क्या फल हुआ। उत्तरः—ज्ञानीका दुःख मुक्तिके आनन्द में दबा रहताहै जैसे दो बेगारी हैं एक जानताहै कि मैं दोघड़ी में छूटूंगा दूसरा नहीं जानता कि मैं

कब छूटूंगा हे वादी । विचार देख दुःख दोनों का समप्रतीत होताहे परन्तु जानने वाले कूं थोडा दुःखहै। नहीं जाननेवाले कूं बहुत दुःखहै । ऐसे ज्ञानी अज्ञानीके दुःखमें बहुतभेदहै। शंकाः—तुमतो जैसे प्रथमथे वैसेही अबभी दीखते हो ज्ञान होकर कुछ और प्रकारके न हुये । उत्तरः—जिस समय तुमकूं रज्जु में सर्पकी भ्रांति हुईथी उसकूं देखकर कम्पने लगे थे और गिरकर चोट लग गईथी फिरकिसी के उपदेश और अपनी युक्तिसे रज्जुका अनुभव किया तुम कहो कि आपकी सूरत भी बदलीथी कहताहै कि मेरी सूरत तो नहीं बदली थी परन्तु अन्तःकरणकीवृत्ति बदल गई थीउत्तर फिर हमारे अन्तःकरणके साक्षी क्या तुम हो जसे भ्रांति-समय तुमकूं कँपाथी पीछे निवृत्ति होगई सूरत न बदली ऐसे हमकूं भ्रांतिथी सो निवृत्ति होगई अपने अन्तःकरण के हम साक्षी हैं । शंकाः—तुम कहतेहो यो जगत अज्ञानका कार्य्यहै वो अज्ञान तो नाश होगया कार्य्य उसका कैसे बना रहा । उत्तरः—भ्रांति समय जो तुमकूं कँपातीथी और गिरकर चोट लगीथी फिर जिस समय वोभ्रांति दूरहुई कार्य्य उस भ्रांति का वो कँपा और वो चो उसी समय जाती रही थी। शंकाः—कहता है कँपा तो दो घडीके पीछे और चोट दशदिनके पीछे होगई थी। उतरः—आश्चर्य की बातहै जो घडीभर भ्रान्ति नहीं रही उसका कार्यतो दश-दिन के पीछे गया और हमारा अज्ञान परार्द्ध संख्यासे भी

परेकाथा वो नाश हुआहै उसके कार्य्यकूं कहते हो कि उसी समय क्यों न जाता रहा शरीरपातके पीछे कार्य भी नाश होजावेगा औरभी बहुत दृष्टांतहैं वृक्ष कटनेके पीछे वैसाही हरा प्रतीत होताहै और किसी वस्त्र वा पात्रमें गन्ध रक्खीहो पीछे निकालने के भी कईघड़ीगन्ध बनी रहती है और किसीकूं स्वप्नमें सिंहने झडपाय। वो जाग उठा देखता है कि सिंह नहीं परंतु कंपा दोघडी पीछे जाती है । शंकाः—यो जो तुम भोग भोगतेहो ये ज्ञानकूं नष्ट करदेंगे । उत्तरः—जीते हुये चूहेने बिलाईको न मारा तो मरा क्या मारेगा और जैसे कोई वज्रलगने से न मरा क्यों वो तुलीकी तीरसे मरेगा जिस कालमें अज्ञान बढा हुआ था उस समय तो ज्ञान नाश हुआ नहीं अबतो उस अज्ञान कूं ज्ञानने नाश करदिया उसका कार्य ये अन्न भक्षणादि तुच्छ पदार्थ ज्ञान कूं क्या नष्ट करेंगे । और दूसरे जो पुरुष चोर जारकूं जानताहै वे चोर जार उसके बुरे होने का प्रयत्न नहीं करते और डरतें रहतेहैं और जो प्रयत्नकरेंभी तो वो चैतन्यहै ऐसे ज्ञानी इन भोगरूप चोरों को जानताहै और तीसरे कोई स्त्री नेत्र शरीरादि करके तो सुन्दरहो परन्तु उसकी उपस्थ इंद्रियमें गरमीका विकारहो जो उसविकारकूं जानताहै उसकूं उस स्त्रीकेहाव भाव कटाक्ष नहीं मोहते न वो स्त्री उसके सामने हावभाव कटाक्षकरतीहै ऐसे ज्ञाना इस मायारूपी स्त्रीके अवगुणोंकूं जानताहै।शंका।

जा तुम सदा "ब्रह्माऽहमस्मि ब्रह्माऽहमऽस्मि" ऐसा अनुसंधान न करते रहोगे तब जो ब्रह्मज्ञान नष्ट हो जावेगा। उत्तरः-तुम "ब्राह्मणोऽहम् ब्राह्मणोऽहम्" इसका सदा अनसंधान न करोंगे तो भूल जावोगे जैसे तुम अपनी जाति कूं नहीं भूलते वैसे हमने एक बेर वस्तुका निश्चय करलिया है वो हमारा ज्ञान कैसे जाता रहेगा और आपका निश्चय तो झूंठा है एक युक्ति से जाता रहता है यो भी कहता है कि मेरा शरीरहै और योभी कहता है कि मैं ब्राह्मण हूं कितना विरोध है ऐसा निश्चय तो आपका बिना अनुसंधान के बना रहेगा और हमारा जो निश्चय है कि सहस्रों श्रुति, स्मृति, युक्ति और अनुभव करके और तुम सदृश वादियों के मतोंकूं खंडन करके जो निश्चय किया है वो बिना अनुसंधान के जाता रहैगा। शंकाः—जिनकूं शाप अनुग्रह की सामर्थ्य होतीहै वे ज्ञानी हैं। उत्तरः—शाप अनुग्रह ज्ञान का फल नहीं तपका फलहै। शंकाः—ज्ञान बिना तपके कैसे हुआ। उत्तरः—तप दो प्रकार का है एक तप शाप अनुग्रह की सामर्थ्य करा देता है और एक तप ज्ञानकूं उत्पन्न करता है। शंकाः—व्यास वशिष्ठ, सनकादि भी तो ज्ञानीहैं। उत्तरः—उनके दोनों प्रकारका तप है हमारे एकही है दूसरा तप न होनेमें कुछ ज्ञानी की क्षति नहींहै जैसे जौहरी वस्त्रादिकी परीक्षा न कर सके तो उस जौहरी की क्या क्षतिहै ऐसेही ज्ञानी गंडा

तावीज प्रेतादिकों के मंत्रादि न जानता हो तो क्या ज्ञानी की क्षतिहै तात्पर्य ऐसी ऐसी तर्कोंका खंडन बहुत वेदान्त-शास्त्रमें लिख रहाहै मुक्ति की इच्छावाला ऐसे २ बादोंमें बुद्धिको न समाप्तकरे केवल वेदवाक्यमें विश्वास करे और जो पुराणादि में जड़भरतादि लिखेहैं कोई कहे कि ऐसे ज्ञानी होते हैं तो क्या उसके मुखमें मारने के लिये श्रुति रूप वज्र नहींहै तात्पर्य वेद ऐसाभी कहते हैं जैसे जड़-भरतादि हुऐ हैं और ऐसा भी कहतेहैं ज्ञानी अपनी अवस्था वालोंके साथ विहार करता हुआ और सवारियों में बैठा-हुआ स्त्रियोंके साथ रमता हुआ वो ज्ञानी अपनी दृष्टिमें कुछ नहीं करताहै, बशिष्ठ,याज्ञवाल्क्य से आदि लेकर बहुत प्रसिद्ध हैं और जनक चूड़ालादि बहुत स्त्रीतक ज्ञानी हुए हैं क्या सब जड़भरतवत् आचरण करते थे तात्पर्य यों है मूर्ख लोग वेशास्त्रके एक २ देशकूं सुनकर वेद-शास्त्रके तात्पर्यकूं न जानकर कुछ २ बक्तेहैं उनका निश्चय उनके रहो हमको क्या काम है। हम सिद्धान्त कहते हैं प्रथम तो जडभरतादि भी खाना सोना आदि त्यागकरके काष्ठपाषाणवत् नहीं रहे संगकी भांतिसे उदासीन रहतेथे क्योंकि संगीलोगों करके बांध होजाताहै और निःसंगसुख-कूं प्राप्त होताहै इसलिये सदा सुखकी इच्छावालों ने संग त्यागदेना। ज्ञानकी परीक्षाके लिखे वैराग्य उपरति बोध कूं हेतु १ स्वरूप २ कार्य ३ अवधि ४ इन चार चार भेद

करके लिखते हैं वैराग्य के हेतु आदि ये हैं ॥ शब्दादि विषयोंमें दोषदृष्टिहोनी १ त्यागदेना२फिर भोगोंमें दीनता न होनी ३ ब्रह्मलोक कूं तृणवत् समझना ४ उपरति के हेतु आदि ये हैं॥ यम नियमादि१ अन्तःकरणका निरोध२ व्यवहार का बहुत कम होजाना अर्थात् खाने सोनेमें भी संकोच ३ सुषुप्तिवत् जाग्रत् अवस्था रहनी ॥ बोधके हेतु आदिये हैं ॥ श्रवणादि १ तत्त्वमिथ्या का जानलेना २ फिर ग्रंथिका उदय न होना अर्थात् देहादिमें अहंबुद्धि न होनी ३ जैसे प्रथम देहादि में अहम्बुद्धि थी वैसीही स्वरूपमें दृढ़बुद्धि होजानी ४ मुक्तिकी इच्छावालोंके वैराग्यादिके हेतु आदि तारतम्यता करके रहते हैं क्योंकि सबके कर्म एक प्रकारके नहीं इन सब में कि जो वैराग्यादि के हेतु आदि लिखेहैं उनमें तत्त्वमिथ्याका जान लेना जो बोधका स्वरूप लिखाहै योही मुक्तिका कारणहै और सब ज्ञानियों के योही एक रस है जो वैराग्यादि के हेतु आदि ऊपर लिखेहैं वैसे जो किसीके हों तो बहुत पुण्य का फल है इससे सिवाय कोई पुण्य नहीं और जो किसीप्राति बन्ध करके तीनों एक जगे न देखने में आवें तो उनके फल ऐसे होंगे कि वैराग्य उपरति तो पूर्णहो बोध किसी प्रतिबन्धसे न हो तो मुक्ति नहीं होगी। तपके बलसे ब्रह्म साकार की प्राप्ति होगी और जो बोधहै वैराग्य उपरति इस जन्ममें न देखनेमें आवे

तो मुक्ति निश्चय होगी, परन्तु जबतक यो शरीर रहेगा हर्ष-शोकादि आभास मात्र बने रहेंगे बोधका स्वरूप सब ज्ञानियों के एक रसहै वैराग्य उपरति मैं तारतम्यता है जैसे १०० गौ दूध सबका एकरंग एक रस और व्यक्ति दुर्बला-पन मोटापन स्वभावादि पृथक् २ ऐसे १०० ज्ञानी ज्ञान सबका एकरस और व्यवहार चलनस्वभावादि सत्त्वादि गुणोंकी उपाधिसे पृथक् पृथक् अर्थात् किसीके सत्त्वगुण बहुत किसीके रजतम बहुतहैं सत्त्वगुणी शुकदेव, बामदेव, जड़भरथ, सनकादि,और रजोगुणी जनक, चुडालादि और तमोगुणी दुर्वासादि सत्त्व रज तमोगुणी बहुत वर्तनेसे सत्त्वगुणी; रजोगुणी, तमोगुणीकहे जाते हैं, परंतु तीनों गुण सबके तारतम्यता करके वर्त्तते हैं ॥ ज्ञानके होने और वैराग्य उपराति सिद्धि लक्ष्मी आदिके न होनेमें यो-व्यवस्थाहै ज्ञान उपरति वैराग्य सिद्धिलक्ष्मी आदि पुण्यका फलहै जिसके पूर्ण पुण्य हुआ जैसे जलसे घट भरा रहता है उसके तो वैराग्य उपरति ज्ञान सिद्धि लक्ष्मी आदि सब होतेहैं और जो केवल ज्ञानहो वैराग्यादि न हो तो उससे भी थोडे पुण्यका फलहै और जो ज्ञान न हो वैराग्य उपरतिहो उससेभी थोडे पुण्य का फल है और जो वैराग्य ज्ञान तीनों न हों सिद्धि लक्ष्मी आदि हों उस से भी थोडे पुण्यका फलहै और जो सिद्धि वैराग्यादि न हो केवल लक्ष्मी राज्यादि हो उससे भी थोडे पुण्य का फल है राजासे लगाकर कंगालपर्यन्त पुण्यकी तारतम्यता कल्पना

कर लेनी पुण्यकी तारतम्यसे ज्ञानियों के वैराग्यकी भी तारतम्यता कल्पना कर लेनी जो तीनों वैराग्यादि किसी ज्ञानीके देखनेमें आवे तो वो ज्ञानी ऐसाहै जैसा मनुष्योंमें चक्रवर्ती राजा जैसे जड़भरत शुकादि हैं ऐसा नहीं समझना कि जो ऐसेही हों वोही ज्ञानी हैं और ऐसोहीं की मुक्ति होती है। शंकाः—फिर ऐसे पुरुषों की शास्त्रमें बहुत प्रशंसा क्यों लिखी है। उत्तरः—ऐसे पुरुषों कं जीवन्मुक्ति का बहुत आनन्द रहताहै जैसे चक्रवर्ती राजाकूं मनुष्यानन्द बहुत रहताहै है और जैसे राजासे जो कमलक्ष्मी आदि वालेहैं उनकूं भी तो आनंद तारतम्यता करके रहताहै और वे भी तो मनुष्यही कहे जाते हैं। ऐसे वैराग्य उपरतिमें कम जो ज्ञानीहैं वेभी ज्ञानीहैं अज्ञानी नहीं। शंकाः—ज्ञानीके लक्षण शास्त्रमें ऐसे ऐसे लिखेहैं क्रोध, शोक, भय न होना जितेन्द्रिय, क्षमा, वैराग्य, दया, निर्लोभ, दाता, सबका प्यारा होना॥

टी०—दाता होना अर्थात अभय दानदेना अभय दान दो प्रकारका है। एक यो अपने शरीर वाणी मनसे किसी कूं भय न देना दूसरें ज्ञानका उपदेश करके संसारके दुःखोंसे अभय करदेना॥

मू०—ये ज्ञानके चिह्नहैं ऐसे २ वाक्यों की क्या गति होगी। उत्तरः—ऐसे २ वाक्य प्रथम तो ज्ञान होनेके लिये और ज्ञानके पीछे जीवन्मुक्ति की सिद्धिके लिये ताकी-

दमें हैं एकादशी के व्रतवत् नियम नहीं जो एक दाना भी अन्नका मुखमें जापड़े व्रत टूट जावे ऐसेही जो कभी किसी पापके उदय होनेसे ज्ञानीकूं काम क्रोध आजावे तो ज्ञानही जाता रहता जिस कालमें सनकादि महाज्ञानी श्रीनारायणजी के मिलने के लिये वैकुण्ठकूं गयेथे नारायण के पार्षदों ने जब उनकूं भीतर जानेके लिये मने किया तब उनको क्रोध आगया फिर शाप देदिया अर्थसे योंभी प्रतीत होताहै, कामके बिना क्रोध नहीं आता विचारो ज्ञान उनका नहीं जाता रहा और यो जो शंका करे कि वे ईश्वरथे समर्थथे अर्थात् वे ईश्वरकी कोटी में हैं तो मनुष्य कोटीमें ऐसी २ अनेक कथा पुराणों में वेदोंमें दुर्वासादि की प्रसिद्धहैं और दूसरे यो कैमुतिकन्याय है जो समर्थ पुरुषोंकूं ईश्वरोंकूं काम क्रोध आये तो जीवका तो यो अनादि स्वभावहै जीवको काम क्रोधके आजानेमें क्या आश्चर्यहै । शंकाः— ज्ञानीका दूसरेकूं उपदेश करनेसे क्या कामहै । उत्तरः— ज्ञानीकूं जगत् में योंही एक करनेके योग्यहै कि जैसे बने अज्ञानीकूं ब्रह्मतत्त्वका उपदेशकरे । शंकाः- श्रीभगवान् तो यों कहतेहैं कि, कर्मसंगी पुरुषोंकूं कर्मसे न हटावें । उत्तरः- श्रीभगवान्ने कर्मसंगी पुरुषोंका उसी जगह विशेषण देरक्खाहै कि अज्ञानी कर्मसंगीकूं ब्रह्मतत्त्वका उपदेश न करे । शंकाः-ज्ञानियोंकी व्यवस्था तो ऐसी २ सुनी जातीहै

कि जब उनको ज्ञान हुआ फिर वे किसी से न मिलैं मौन्य होकर उत्तराखण्डको चलेगये । उत्तरः-यो लक्षण अवधिका है कोई ऐसाभी हुआहो, परन्तु सबका नियम नहीं और दूसरे सत्ययुगादि ऐसे समयथे कि अस्थि आदिमें प्राण बने रहतेथे और कुछ कविपुरुषोंका नियमहै कि बढाकर लिखतेहैं और जो यो न मानो तो ग्रंथोका बनना उपदेश करना यो बिना प्रवृत्तिका कसे बने । विद्याका लोप हुआ चाहिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज कहतेहैं कि ज्ञानके लिये गुरुजीके पास जावे हे अर्जुन ! तुमको वे गुरू उपदेश करैंगे देखिये जो प्रवृत्त होंगे तो उपदेश करैंगे और जो बोलें बतलावेंगे नहीं दृष्टांत युक्ति न देंगे अथवा उनका पताही न लगेगा तो बोध कैसे होगा वेद कहते है कि आचार्यवान् पुरुष ब्रह्म कूं जानताहै तात्पर्य योहीहै कि मूर्ख वेदशास्त्र के हृदयकूं न जानकर कुछका कुछ वक्ताहै ऐसे २ सिद्धान्त शारीरक भाष्य पंचदशी आदि ग्रंथोमें श्रुति स्मृति प्रमाण देदेकर सिद्धकर रक्खे हैं जिस किसीके संदेह हो वहांसे निश्चय करे और जिसकी गुरु वेदांतमें श्रद्धाहै वो तो संशयविपर्ययरहित होकर निश्चय मुक्त होगा ॥

इति श्रीमदानन्दाऽमृतवर्षिण्यां वेदान्तशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

जो किसी पुरुषकूं किसी पापके प्रतिबंधसे महावाक्यके

अर्थमें अपरोक्षज्ञान न होवे तो वो फिर साधनकरै ग्रंथ-में अध्यायसु जो विवेकादि चार साधन कहेहैं मुख्य सार वेही हैं उनहीं चार कूं आचार्योंने नाना प्रकारसे लाखों श्लोकोंमें और भाषामें कहा है उनहीं चारोंका अर्थ स्फुट होनेके लिये उनहीं चार साधनोंकूं अब और प्रकारके लिखतेहैं ज्ञानके साधन दो प्रकारके है अंतरंग१ हिरंग २ अंतरंग मुख्यहै बहिरंग गौणहै बहिरंग साधन ये कहलाते हैं शौच स्नान, सन्ध्यावन्दन वेदशास्त्रोंका पढना, पाठ करना, तर्पण, हवन करना, अतिथि अभ्यागतका पूजन करना, सेवा करनी, अन्न देना ऐसे २ औरभी बहुत नित्य कर्म हैं उनके न करने में पापहै करनेसे पापकी निवृत्ति होतीहै; और पुत्रादिके ज-न्मादि में जातिकर्म श्रद्धादि करने पूर्णमासी संक्रांत्यादिमें तीर्थोंमें जाना, स्नान दान करना, निष्काम यज्ञकरने ऐसे २ औरभी बहुत नैमित्त कर्महैं और कोई अपनेसे खोटा काम शास्त्रसे विरुद्ध हो जावे उसकी निवृत्तिके लिये चांद्रायणादि व्रत और श्रीगंगाजीमें स्नानादि करने ऐसे २ और भी प्रायश्चित्त कर्म हैं और बद्रीनारायणादि के दर्शन करने, ती-र्थोंका सेवन करना, पाषाणादि मूर्तियों कूं पूजना परिक्रमा करनी, झांझ घंटादि बजाने, चौके धोती से रोटीखानी, यों खाना, यों न खाना इस बरतनमें खाना इस बरतनमें नखाना इसके हाथका खाना, इसके हाथका न खाना, यो ब्राह्मण यो क्षत्री वर्णादि; यो ब्रह्मचारी, यो गृहस्थी आदि आश्रमी

इस प्रकारके औरभी बहुत बहिरङ्ग साधन हैं। पुराणोंमें धर्म शास्त्रादिमें उनका बहुत विस्तार है वहांसे सुनकर संपादन करे परम प्रयोजन उनका अन्तःकरण की शुद्धिहै बहिरंग प्रथम मन्दबुद्धिके लिये है । अन्तरंग बुद्धिमानूके लियेहै बहिरंगसाधन अन्तरंग साधनों की इच्छा रखतेहैं अन्तरंग बहिरंगसाधनोंकी इच्छा नहीं रखते और ऐसा जो कहते हैं कि कर्मकांड और उपासनाकांड ज्ञानके साधन हैं वहां जो व्यवस्था है जो उपासना इस प्रकारकी है कि पाषाणादि मूर्तियों का पूजन करना और झांझ घंटा बजाने परिक्रमा करनी औरभी बहुत ऐसी ऐसी उपासना का बहिरंग साधनोंमें अन्तर्भावहै और परमेश्वरका ध्यान करना प्रेमकरना विषयोंसे रुककर चित्तकूं परमेश्वरमें लगाना ऐसी ऐसी उपासना का अन्तरंग साधनों में अन्तर्भाव है । अन्तरंग साधन ये कहलाते हैं मनमें मान नहीं रखना कि ऐसे पण्डित जातिमें ब्राह्मण धनवाले और अपने गुणोंकी औरोंसे श्लाघा करानेकी इच्छा न रखनी इसका नाम अमानित्वहै १ धर्मध्वज न होना, जो अपनेमें थोड़े गुणहों तो औरोंके सामने बहुत नहीं प्रकट करने ऐसा हम जानतेहैं एसी पूजा करते हैं ऐसे ऐसे पाषण्डों का त्याग करना इसका नाम अदंभित्व है २ मन वाणी शरीर से किसीकूं दुःख न देना इसका नाम अहिंसाहै ३ बेप्रयोजन किसीने आपकूं बुरा बोला अथवा मारभी दिया समर्थ होकर उसकूं कुछ न

कहना यो समझना कि प्रारब्धका भोगहै इसका कुछ दोष नहीं इसका नाम क्षमाहै ४ प्रसन्न चेष्टा रखनी नम्र होकर चलना अकड़ ऐंठ कर न चलना नम्र बोलना मन्दमुसक्यान पूर्वक ऐसा बोले मानोमुखसे फूल झड़तेहैं दूसरेका क्षोभित हृदयभी शान्त होजावे इसका नाम कोमलताहै ५ गुरूकी मन वाणी शरीरकरके उपासना करनी ६ व्यवहारमें छल न करना अंतःकरणगत जो दोष हैं उनकूं दूरकरना इसका नाम अन्तरशौचहै और बहिःशौच जलमृत्तिका करके ७ सन्मार्गमें स्थित रहना जैसे जो जगत् में कहानी है ॥ 'धर्म किये जो होवे हानि । तोभी न छोड़ धर्मकी बानि ॥' एक इतिहासभी लिखतेहैं एक ब्राह्मण बाल्य अवस्था से ठाकुरकी सेवा करता था कोई उससे पाप बुद्धिपूर्वक नहीं बना था एकदिन उसकूं रस्ते में चार आदमियों ने घेरलिया जो कुछ उस पै था छीन लिया और कहा कि तुमकूं मारेंगे ब्राह्मण ने विचारा कि मैंने बाल्यअवस्था से ठाकुर सेवाकरीहै कोई पाप नहीं किया ये मुझकूं वृथा मारते हैं सो मारो परन्तु जो ये कहैं तो ठाकुर जीको तो तीर्थमें पधार दूं कोई वहां पास जलाशय था उनसे आज्ञा लेकर ठाकुरजीका सिंहासन हाथमें लेकर कह हे परमेश्वर ! बाल्य अवस्था से आपकी सेवा करीथी आज उसका या फल है कि विनापाप मारा जाताहूं । वहां आकाशवाणी हुई कि तुमने पूर्व जन्ममें इन चारोंको एक २ बेर

माराथा यो पूजा का फल है जो तुमकूं ये चारों एकबेर मारतेहैं यो सुनकर चारों आदमी वहां गये बूझा कि तुम किससे बात करतेथे उसने कहा तुमकं क्या कामहै जो मुझकुं मारना है तो मार यो बहुत बेर जो उन्होंने बूझा फिर सब व्यवस्था ठाकुरसेवादिकी सुनादी चारोंने उसकूं छोड़ दिया और जो कुछ उससे छीनाथा दे दिया और कहा कि हम चारों तेरे पिछले किये का इसलोक परलोकमें बदला नहीं चाहते ८देहका निग्रह करना रात्रिका जो बीच उसमें डेढपहर सोना उससे सिवाय आसन पर सीधा स्नानादि क्रियाके बिना बैठकर श्रवणादि करते रहना९ शब्दादि विषयों से वैराग्य करना १० अहंकार न करना कि मैं ऐसा वैराग्य वाला हूं ११ जन्म मृत्यु जरा व्याधिमें दुःख और दोषभीहैं बारम्बार उनका अनुसंधान करते रहना क्योंकि जबतक शरीरकूं किसी रोगने नहीं ग्रसा श्रोत्रादि इन्द्रिय भी बने रहते हैं जरा भी न होवें तबतकही कुछ पुरुषार्थ हो सकता है कोई कहै कि साहब जब प्यास लगैगी तबही कुँआ खोदलैंगे पीछेकी बात किसने देखी है जैसे प्यास समय वो त्राहि त्राहि करके मरजाता है ऐसेही जो बनेकाममें मोक्षका उपाय नहीं करते पीछे वही व्यवस्था होतीहै १२ पुत्र दारादि में आसक्ति न करनी अनित्य जानकर प्रीतिका त्याग करना १३ पुत्रादिके दुःख सुख में यो अध्यासन करना कि मैं सुखी दुःखीहूं १४

इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें समचित्त रहना क्योंकि लाभ हानि दिन रात्रि ऋतु युगादिवत् बदलतेरहतेहैं अष्टावक्रजी कहतेहैं कौनसी वो अवस्था और कालहै कि जिसमें प्राणियों को द्वंद्व, हर्ष, शोक, हानि, लाभ, सुख, दुःखादि नहीं रहते जो परायेवश होनेवाले कार्यहैं उनको जो प्रतीकार होता तो नल राम युधिष्ठिरादि दुःखकरके क्यों दुःखी होते १५ परमेश्वरके विषय अनन्य योगकरके भक्तिकरनी अर्थात् परमेश्वरके बिना नहीं है भजनेके योग जिसभक्तिमें ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति करनी तात्पर्य सर्वात्मदृष्टि होना १६ एकांतदेश शुद्धचित्त का प्रसन्न करनेवालाहो जिसजगह सिंह सर्प चोरादि की भीति न हो और आपकूं स्त्री आदि करके विक्षेप न होवे उस देशका सेवन करना १७ प्राकृत जो जन कि जो स्त्रीकासंग और खाना सोनादि इसीकूं कहते हैं कि इस शरीरहुएका योही फलहै ऐसोंके समीप नहीं बैठना १८ वेदान्त शास्त्रके श्रवणादि विचारनेम सदा लगे रहना तत्त्व पदार्थों की जो सिद्धि उसी में निष्ठा रखनी तीसरे अध्याय में भी लिख आयेहैं कि ज्ञानके हेतु श्रवणादि हैं ज्ञानके होनेमें ये मुख्य साधनहैं इसी बात कूं प्रथम तो वेद भगवान् ने कहा है फिर व्यासजीने भी सूत्र में कहाहै कि बारम्बार श्रवण करना एकही वेर न करना पंचदशीकार भी कहते हैं कि मन वाणी आदि तककूं सावकाश नहीं देना सोने मरने पर्यन्त

वेदान्त शास्त्रकी चिंता करके कालकूं विचारना तात्पर्य श्रीकृष्ण श्रीशंकराचार्य भगवान् से आदि लेकर सब आचार्य इसी बातकूं सिद्ध करते हैं कि मुक्ति की इच्छावाले वेदान्त शास्त्र बारम्बार श्रवण करना वेदान्त शास्त्रके बिना और पुराण शास्त्रोंका श्रवण न करना इसका भी नियम करदिया है क्योंकि बुद्धि एकहै विचल न जावे बासिष्ठजी भी कहतेहैं कर्म वो है जो बन्धन के लिये न हो विद्या वो है जो मुक्तिके लिये हो निःकाम कर्मके बिना और कर्म केवल आयासके लिये है ब्रह्मविद्याके बिना और न्यायशास्त्रादि चित्रकारी आदिवत् विद्याहै १९ सबसे सिवाय इस देहका फल मुक्तिकूं समझना मुक्तिके साधनोंमें ऐसे प्रलय करना जैसे किसीके शरीरमें अग्नि लगजावे वस्त्र बाल जलनेलगे जैसे वो गंगा जीकूं दौड़ता है जो कोई रस्ते में एक बात भी करले अथवा लोभ देकर खडा रक्खे तो नहीं खडाहोता ऐसे संसारके तापोंमें तापित हुआ यो पुरुष ब्रह्मविद्या गंगाजीकूं जल्दी प्रसन्न करके प्राप्तहो स्त्री धन वस्त्रादिजो रचे हुए मायाके झूंठे अनित्य दुःखदायी पदार्थहैं उनमें भोगबुद्धिकरके पतंगवत् नष्ट न हो २० ये बीस साधन श्रीकृष्णचन्द्रने गीता शास्त्रमें कहेहैं और २६ साधन दैवी सम्पत्के कहेहैं उनकूं भी सुनो अभय होना किसी से इसलोक परलोक में भय न करना तात्पर्य पापात्माकूं भयहुआ करताहै १ अन्तः

करणकूं भलेप्रकार शुद्ध करना २ ब्रह्मज्ञानका जो उपाय उसमें लगे रहना ३ दान करना यथाशक्ति कुछ अपने पास न हो तो अभय दानदेना ४ इन्द्रियों कूं अपने अपने विषयों से रोकना ५ द्रव्ययज्ञ चान्द्रायणव्रतादि तपयज्ञ उपयज्ञ पढना पाठकरना यो यज्ञचित्तवृत्तिनिरोधयोगयज्ञ ऐसे ऐसे यज्ञसे लगाकर ज्ञानयज्ञ पर्यन्त जैसा अपने कूं अधिकारहो करते रहना ६ वेदशास्त्रोंका नित्यपढना पाठकरना ७ अपने धर्म का अनुष्ठान करना ८ कोमलता ९ अहिंसा १० सत्य बोलना जो प्रत्यक्षादि प्रमाण करके भले प्रकार सिद्धकरलियाहै ११ क्रोध न करना तत्काल पश्चात्काल केवल दुःख का हेतुहै जिस समय क्रोध आवे वो समय किसी प्रकार वितावे पीछे विचारे जो उस समय में ऐसा कहता करता तो क्या होता १२ त्याग करना १३ चित्त कूं शान्त करना १४ पीछे किसीके अवगुण नहीं कहने लिखा है कि जो किया हुआ अवगुण किसीका कहे तो बराबर का पापी होता है और जो कुछ भला कर बढा कर कहे तो दूना पापी होता है जो अपने सामने किसीके अवगुण कहे प्रथम उसीकूं पापी जाने १५ दया अर्थात् किसी कूं दुःख न देना और जो बने तो दूसरे का निवृत्तकर देना १६ लोलुप न होना अथात् कुछ पदार्थके लिये पामरोंके सामने दीनता न करनी १७ क्रूर कठोर चित्त न होना १८ खोटे कामोंमे

लोकलज्जा रखनी वहां यो न समझना कि मेरे निन्दा स्तुति मान अपमान बराबरहैं १९ चपल न होना अर्थात् वृथा क्रिया न करनी २० तेजस्वी रहना राजा आदि के छायामें न दबना जैसे और आदमी हैं ऐसेवेभी हैं २१ क्षमा२२ धैर्य सत्त्वगुणी अर्थात् दुःख सुख भूंख प्यास लाभ हान्यादि में चित्त कूं स्थिर करना २३ शौच,२४ किसीसे द्रोह न करना २५ चारगुण सम्पादन करने से चित्त प्रसन्न होजाता है चित्तके प्रसन्न होने से समस्त दुःख नाश होजाते हैं जो कि आपसे जाति विद्या में बड़े हैं उन से द्वेष न करना १ बराबरकेसे मित्रता रखनी २ छोटों पर दया करुणा करनी ३ पापी चोर जारों की उपेक्षा करनी ४ आत्माके विषय पूजा को अभिमान न रखना कि हम पूजा के योग्य हैं जो दैवी सम्पत्को पुरुष है उसमें ये गुण स्वभाव करके रहते हैं जिसमें ये गुण होंगे वो निश्चय मुक्त होवेगा और आसुरी सम्पत् अवगुण दंभ दर्प काम क्रोध लोभादि बहुत हैं गीताशास्त्र में लिखेहैं कुछ थोडेसे इस ग्रन्थमें भी नवें अध्याय में लिखे हैं वे बंधकेलिये हैं जिसकूं मुक्त होना है वहां से निश्चय करके उनसे वर्जित रहै दैवीसम्पत्के अनुष्ठान करनेसे आसुरी सम्पत्का तिरस्कार होजाताहै आसुरी सम्पत्के वर्जनेसे दैवीसम्पत्के गुणोंका अनुष्ठान होजाताहै जो लक्षण स्वभाव से ज्ञानीके रहते हैं और साधककूं प्रयत्न करने

से सिद्ध होतेहैं उनकूं इस प्रश्नके उत्तरमें लिखते हैं ।
प्रश्नः—कैसे पुरुषकूं लोग ज्ञानी कहतेहैं १ और कैसे वो ज्ञानी बोलताहै २ बैठता है ३ चलता है ४ । उत्तरः—जिस कालमें यो पुरुष जितनी मनमें बासना है सबकूं त्याग करके निजानन्द करके तुष्ट रहताहै दुःखों में दुःख सुख में सुख नहीं मानता दूर होगये हैं भयाराम क्रोध जिसके उसकूं ज्ञानी कहते हैं १ शुभ अशुभ-को प्राप्त होकर किसी जगह प्रीति नहीं करता प्रिय-कूं प्राप्त होकर हर्ष नहीं करता अप्रियकूं प्राप्त होकर शोक नहीं करता साक्षी हुआ बोलता है २ मुक्तिमें यत्नकरनेवाले विचारवान्के मनकूंभी जो इन्द्रिय हरलेते हैं उन सब इन्द्रियोंकूं रोककर परमेश्वरपरायण हुआ बैठा रहता है ३ सारी कामनाका त्याग करके निर्मांण हुआ और जो कामना फिर प्राप्तहों उनमें ममता इच्छा नहीं करता हुआ निरहंकार हुआ विचरता रहता है ४ फिर भी ज्ञानी का लक्षण और प्रकार करके सुनो यो ज्ञानी का लक्षण स्वसं-वेद्य और परवेद्यभी है उदासीनवत् स्थित हुआ ॥

टी०—उदासीनवत् लिखनेमें यो शंकाहै कि उदासीनहीं क्यों न कहा ? समाधान यो है दो मनुष्य झगडा करनेवालोंमें कोई तीसरा भी उदासीन चला आवे वो देखता रहै चला जावे तो झगडा करनेवालोंकी कुछ हानि नहीं होती परंतु आत्मा उदासीनवत् तीन गुणोंके झगडेका द्रष्टाहै जो चला जावे अर्थात् उनका अभिमान छोडेद तो झगडा करनेवाले भी नहीं रहते इसलिये उदासीनवत कहा ।

मु०—गुणों करके नहीं विचलता है यो विचारता रहता है कि गुण वर्तरहेहैं समान हैं पाषाण सोना निंदा स्तुति मित्र शत्रु मान अपमान जिसके सारे आरम्भोंके त्याग करनेका स्वभावहै जिसका उसकं ज्ञानी गुणातीत स्थित-प्रज्ञ कहते हैं और जो ज्ञानी का केवल स्वसंवेद्य लक्षण है ॥ सत्त्वगुणका जो कार्य प्रकाशादि रजोगुणका जो कार्य प्रवृत्ति आदि तमोगुणका जो कार्य मोहादि जो अपने आप प्रारब्ध के बलसे प्राप्तहों तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता जो निवृत्त होजावे तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता मुक्तिकी इच्छावाले के तो सत्त्वगुणमें राग हर्ष और रज तमोगुण में द्वेष शोक होता है ऐसे २ साधन गीता शास्त्रा-दिमें बहुत लिखे हैं तात्पर्य यो है जैसे बने शरीर इन्द्रिय प्राण अंतःकरणकूं नित्य प्रतिदिन सिवाय २ अभ्यास करके निरोध करके वशिष्ठजी कहते हैं जैसे अपने हाथसे हाथ दांतसे दांत मलकर हाहाकारादि शब्द करके मनकूं वशकरे विषयाकार अंतःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म करने से जो अपना स्वरूप हुआ हुआ नहीं प्रतीत होता सो स्वरूप ज्ञानद्वारा अपरोक्ष होजाताहै हुई वस्तु न प्रतीत होतीहो इसमें दृष्टान्त कहते हैं जैसे १० लड़कों में पढ़ता हुआ किसी का लड़का उस लड़के का शब्द बाहर-से पृथक् भले प्रकार नहीं प्रतीत होता अर्थात् उसकूं उसका पिता दूसरेसे यो नहीं कह सक्ता कि यो मेरा लड़का पढ़ताहै

ऐसेही जिसके इन्द्रियादि अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्त होरहे हों उसकूं ज्ञान होना कठिनहै जैसे जो वे ९ लड़के पढ़ने से चुप होजावें अथवा शनैः शनैः पढ़ैं और वो लड़का अपने स्वभावके अनुसार पढ़ता रहै तब लड़केका शब्द निश्चय होसक्ता है ऐसेही जो विषयाकार अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म होजावै तब अपना स्वरूप भलेप्रकार प्रतीत होसक्ता है इसलिये अवश्य अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म करदेनी योग्य हैं इन्द्रियोंके रोकने से अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म होतीहैं इसमें भी दृष्टांत कहतेहैं जैसे किसी तालाब में दश गूल लग रहीहों उसकूं जो सुखाना हो तो प्रथम गूल बन्दकरे फिर सूर्यके तपनेसे तालाब सूखजाताहै ऐसे प्रथम इन्द्रियोंकूं निरोध करे फिर विचारस्प सूर्य तपावे इसप्रकार अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म होसक्तीहैं भला इसबातकी परीक्षाके लिये प्रथम महीनाभर तो ऐसा अभ्यासकर देखो कितनाभेद पड़ताहै जिसके अभ्यास करनेसे नित्य प्रतिदिन उसका फल करामलकवत् प्रतीत होताहो फिर उसकूं न करो तो कहो उससे सिवाय और कौन पशुहै ॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंका सूक्ष्म होजाना इसीकूं मनोनाश कहतेहैं ऐसे २ साधनों करकेयुक्त जो पुरुष सो ज्ञानद्वारा अनायास निरतिशय आनन्दकूं प्राप्त होताहै ॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः ।

मू०—सत्त्वगुणके बढाने से रजोगुण तमोगुणके कम करनेसे ज्ञानद्वारा अपने स्वरूप की प्राप्ति होतीहै इसलिये सत्त्वगुणके बढ़ाने रज तमो गुण कम करने के लिये तीनों गुणोंका लक्षण लिखतेहैं जिस प्रकार ये तीनों गुण देहके विषय आत्माकूं बन्धन करतेहैं सो सुनो सत्त्वगुण निर्मल होने से प्रकाशक शान्तरूप है कोई उपद्रव उसमें नहीं शान्तरूप होने से अपना कार्य जो सुख उसके साथ बन्धन करताहै और प्रकाशक होनेसे प्रकाशकका कार्य जो ज्ञान उसके साथ आत्माकूं बन्धन करताहै।मैं सुखी मैं ज्ञानी ये मनके धर्महैं आत्मासें जोड़ देता है रजोगुण का कार्य और बन्धन प्रकार लिखतेहैः—रजोगुण रागात्मक अर्थात् रागहै आत्मा स्वरूप जिसका और तृष्णासंगकी उत्पत्ति है जिससे सो रजोगुण आत्माकूं कर्मोंसें संग आ० ॥

टी०—जो वस्तु प्राप्त नहीं उसमें अभिलाषारहनी तृष्णा; प्राप्त वस्तु में विशेष आसक्ति होनी सग ॥

मू०—शक्ति करके बन्धन करता रहै तमोगुण तमरूप है सब प्राणियों कूं मोह करनेवाला है सो तमोगुण प्रमाद निद्रा आलस्यादि करके बन्धन करता है सत्त्व आदि अपने २ आविर्भाव में जो करतेहैं उनकी शक्तिकूं दिखलाते हैं जिस समय रज तमो गुणकूं तिरोभाव करके सत्त्वगुण आविर्भाव होताहै सो सत्त्व दुःख शोकादिके कारणहुए सन्तेभी

सुखके अभिमुख करदेताहै रजोगुण सुखादिके कारणहुए सन्ते भी कामोंमें लगा देताहै तमोगुण शास्त्रजन्यज्ञानकूं ढककरके सुखादिके कारणहुए सन्तभी प्रमादादिमें जोड़ देताहै महत पुरुष पूर्व संस्कारसे मिले भी उन्होंने उपदेश भी किया उपदेश समय चित्त प्रमादमें लगा रहा जिस हेतुसे वोही तमोगुणहै महात्माने जो कहा उस अर्थकूं न धारण किया जिस हेतुसे वोही प्रमाद है यो नियमहै कि जब सत्त्वका आविर्भाव होताहै तब रज तम तिरोभाव होजा- तेहैं जब रजोगुणका आविर्भाव होताहै तब सत्त्वतम तिरोभाव होजातेहैं जब तमोगुणका आविर्भाव होताहै तब सत्त्व रज तिरोभाव होजाते हैं जिस कालमें सत्त्वादि देह- में बढ़रहतेहैं उनका स्वरूप लिखते हैं इस शरीरके सारे द्वारों में जिस समय प्रकाश होता है और अन्तःकरण में सुखका आविर्भाव होताहै इस चिह्न से जानना कि अब सत्त्वगुण बढ़ाहुआ है ऐसेही लोभ प्रवृत्ति कर्मोंका आरम्भ अंशमें स्पृहा ऐसे ऐसे चिह्न करके जाने कि अब रजोगुण बढ़रहाहै और प्रकाश अप्रवृत्तिप्रमाद मोहादिके आविर्भाव- में यो जाने कि अब तमोगुण बढ़रहाहै अन्तकाल में जो सत्त्वगुणादि का आविर्भाव हो तो क्या २ फल होता है सोई लिखते हैं जो अन्तकाल में सत्त्वगुण बढ़ाहोवे तो यो देहधारी जीव इसदेह कूं त्यागकरके जो कि पुण्यलोकहै

जहां मल नहीं है सुख भोगनेके स्थानहैं उनकूं प्राप्तहोता-
है । और रजोगुणमें मरकरके कर्मसंगी मनुष्यों में उत्पन्न
होताहै तमोगुणमें मरकरके पशु आदि मूढयोनि में उत्पन्न
होताहै जिस हेतुसे इस शरीर में अपने आप सत्त्वादि गुण
आविर्भावहोते हैं उसका कारण कहते हैं निर्मल फल जो
ज्ञानसुख सो पिछले सत्त्वगुणी कर्मका फल है रजोगुणी
कर्मका फल दुःखादि हैं तमोगुणी कर्मका फल अज्ञाना-
दि " सत्त्वगुणसे ज्ञानादि होतेहैं रजोगुणसे लोभादि हो-
तेहैं प्रमाद मोहादि तमोगुणसे होते हैं सत्त्वगुणी आदि
पुरुषोंकूं देहके पीछे क्या फल होताहै प्रथम तो यो कहा था
अन्तकाल में जो गुण बढाहोवे उसका ऐसा फल होताहै
यहां तारतम्यता का विचार है जे सत्त्वगुणी हैं वे अपने
गुणकी तारतम्यता से ऊपरके लोकों कूं प्राप्त होंगे
जैसे इसलोक में ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रादिकी और
राजा मंत्री आदिकी तारतम्यता है ऐसेही ऊपर भी
देवता गन्धर्वादि ब्रह्मलोकादि लोकों की तारतम्यता
है जितनी यहां मनुष्य लोकमें जिसके सत्त्वगुण की
वृत्ति सिवाय रहीहै वो उसी लेखेसे ऊपर के लोकोंकूं प्रा-
प्तहोगा इसीप्रकार जो गुणी मनुष्य लोकमें ब्राह्मण और
चक्रवर्त्ती राजासे लगाकर चांडाल कंगाल पर्यन्त उत्पन्न
होवेगा और तमोगुणी पशु आदि योनियों में अर्थात् कीट
आदि सर्पादिसे लेकर गोहंसादि पर्यन्त योनियोंमें उत्पन्न

होवेगा और जो ज्ञानीहैं वो गुणातीत हैं मुक्त होवेगा वो यों जानताहै कि मैं इन गुणोंसें पृथक्हूं गुणही कर्त्ता है मैं अकर्त्ताहूं गुणोंका द्रष्टा साक्षीहूं परमेश्वर कहतेहैं गुणातीत मेरे भावकूं प्राप्त होवेगा तात्पर्य्य मुक्त होवेगा ॥ देवता की पूजा करने और यज्ञ आदि दान तपादि करनेसे अन्नके खानेसे ऐसी ऐसी बहुत बातें हैं सत्त्वादिकी परीक्षा होतीहै तात्पर्य जो सत्त्वगुणी देवता की पूजा करे तो जानना कि यो सत्त्वगुणी है ऐसेही रज तमो गुणी की कल्पना करलेनी और ऐसेही यज्ञदानादि में समझ लेना सत्त्वगुण पूजा दानादि करने से सत्त्वगुण बढताहै इसलिये रजोगुणी तमोगुणी सम्बन्धी पूजादि त्याग देने के लिये सत्त्वगुणी सम्बन्धी पूजादि सेवन करनेके लिये पूजादिकूं सत्त्व रज तमो गुण भेद करके लिखते हैं ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति गणेशादिके यजन करनेवाले सत्त्वगुणी हैं यक्षादि के यजन करनेवाले रजोगुणी हैं भूतप्रेतादिके यजन करनेवाले तमोगुणी हैं रजोगुणी तमोगुणी ऐसा ऐसा तप करते हैं कि शास्त्र में तो उसका विधान नहीं और प्राणियोंकूं भयका देनेवाला, घोर, शरीर कूं खेद करनेवाला, मूर्ख वृथा पाषण्ड करके ऐसा तप करते हैं हेतु उसका यो है कि काम राग दम्भ अहङ्कारादि करके युक्त हैं जैसे कि नास्तिकादिके व्रतादि हैं इस समय में बहुत प्रसिद्ध हैं लक्षण उनके श्रीतुलसीदास जीने रामायण में लिखे हैं तात्पर्य्य जो

शास्त्रने नहीं विधान किया सो पाषण्ड है शास्त्रकी विधिसे क-
रना तप आदि सत्त्वगुणी हैं भोजन का भेद कहते हैं:-रस-
वाला अन्न घृत शर्करा करके युक्त और भोजनके पीछे-
शरीरमें अपने रसकरके चिरकाल स्थिररहे और स्निग्ध
कोमलतर और जिसके देखनेसे चित्तप्रसन्न होजावे देखते-
ही मन अंगीकार कर लेवे ऐसा अन्न अवस्था उत्साह श-
क्ति आरोग्य का बढानेवाला सत्त्वगुणा कूं प्रियहै यज्ञ में
ऐसा अन्न देना योग्यहै १. अति कटु अम्ल लवण उष्ण तीक्ष्ण
रूक्ष और दाह करनेवाला ऐसा अन्न दुःख शोक रोगका बढा-
नेवाला है और भोजन के पीछे भी दुर्मन करनेवाला रजो-
गुणी कं प्रियहै अति शब्द सबके साथ जोडदेना २ जिसकूं
बने हुए पहर बीत जावें और गतरस ठंढा होजावे और
जिसमें दुर्गन्ध आवे बासी जूंठा शास्त्रकरके निंन्दित ऐसा
अन्न तमोगुणीहै ३. यज्ञका भेद कहतेहैं-फलकी इच्छा
नहीं है जिन्होंके योही विचार करके कि यज्ञ करना वेद-
विहित है हमकूं करना योग्य है इसप्रकार मनकूं समाधान
करके जो यज्ञकरतेहैं सो यज्ञ सत्त्वगुणी है १ फलका उद्देश
करके दंभ करके जो यज्ञ करते हैं सो रजोगुणी है २. शास्त्र
विधि करके हीन रजोगुणी तमोगुणी अन्न है जिस यज्ञमें मन्त्र
दक्षिणा करके हीन श्रद्धा करके रहित जो यज्ञ सो तमोगुणी
है ३. तपकूं आगे सत्त्वादि भेद करके लिखेंगे प्रथम तपकूं मन-

ह्मणी, शरीर भेद करके लिखते हैं-देवता ब्राह्मण गुरु और कोई महात्मा उनका पूजन करना, कोमल रहना, हिंसा न करनी, पवित्र ब्रह्मचर्य रहना इसकूं शारीरक तप कहते हैं १. मैथुन के आठ अंग हैं सबसे बाजत रहना इसका नाम ब्रह्मचर्य है रागबुद्धि करके स्त्रीका स्मरण करना १, कीर्तन करना २, हांसी चौहल करना ३, भले प्रकार दृष्टि जमाकर देखना ४, गुप्त एकान्तमें बात करनी ५, मनमें संकल्प करना कि ये कैसे प्राप्त हो ६, यो निश्चय करना कि हम इससे संग करेंगे ७, साक्षात् भ्रष्ट होजाना ८. राग पद सबके साथ जोड देना। ऐसा वचन बोलना दूसरे कूं उद्वेग न करे सत्यहो, उसकूं प्यारा लगे, परिणाम में सुखका करनेवाला, थोडे अक्षरोंमें कहना, वेद शास्त्रके पढने पढानेका अभ्यास रखना. इसकूं वाणी का तप कहते हैं २. मनकी प्रसन्नता अक्रूरता मनन करना मनकूं विषयोंसे निरोध करना व्यवहार में माया न करनी इसकूं मानसतप कहते हैं ३. इस तीन प्रकार के तपकूं सात्त्विकादि भेदकरके तीन प्रकार का कहते हैं-एकाग्रचित्त करके फल की इच्छा न करके परम श्रद्धा करके ऐसा जो तीनप्रकारका तप कियाहै इसकूं सात्त्विक कहतेहैं १, जिन्होंने सत्कार के लिये किये साधु हैं मान और पूजाके लिये दंभ करके जो तप किया है सो अनित्य होनेसे रजोगुणीहै २, बिना विवेक के दुराग्रह करके आत्मा कूं पीडा करके अथवा दूसरे के नाशके लिये जो तप करतेहैं सो

तमोगुणी है ३, दानका भेद कहते हैं—हमकूं देना योग्यहै इस बुद्धि करके सुन्दर देश काल में अनुपकारी सुपात्रों-कूं जो दान देना सो सत्त्वगुणी १, जो प्रत्युपकारी कूं वा फलका उद्देश करके वा चित्त में क्लेश करके दान देना सो रजोगुणी २, अपात्रोंकूं वा अदेश काल में देना और जो सुपात्रों कूं भी देना तो असत्कार अवज्ञा करके देना यो दान तमोगुणी है ३. कर्मकाभेद कहते हैं-फलकी इच्छा न करके यों विचार कर कि कर्मकरना वेदशास्त्र की आज्ञा है नित्य करना चाहिये राग द्वेषके विना अभिनिवेश न रखकर जो कर्म कियाहै सो सत्त्वगुणी १, फलकी इच्छा करके अहंकार करके बहुत आयास करके जो कर्म किया सो रजोगुणी २, पश्चात् भावी धनादि-का व्यय हिंसा अपना बल इनकूं नहीं बिचार करके केवल मोहसे जो कर्मका आरम्भ करना सो कर्म तमोगुणी है ३. कर्त्ताका भेद कहते हैं—त्यागदियाहै अभिनिवेश कर्ममें जिसने और गर्वकी जो बात बोलनी उससे रहित,धैर्य उत्साह वाला, कर्मकी सिद्धि असिद्धिमें निर्विकार ऐसा कर्मकर्त्ता सत्त्वगुणी १,रागी, फलकी इच्छावाला, लोभी, हिंसात्मक, अपवित्र, हर्ष शोक करके युक्त ऐसा कर्मकर्त्ता रजोगुणी २,प्राकृत,अनम्र, अवगुणकी शक्तिकूं छिपानेवाला, आल-स्य स्वभाव वाला,शोकशील, दीर्घसूत्री अर्थात् घड़ीके का-मकूं महीना लगावे ऐसा कर्मकर्त्ता तमोगुणीहै३.सुखका भेद

कहते हैं–तम रजोगुणी वृत्तियों का निरोध करके जो सत्त्वगुण बढता है कार्य उसका शांति संतोष निर्वैरता बेचाह कोमलताआदि है उस कालमें जो अंतःकरण में सुख होताहै सो सत्त्वगुणी है प्रथम अन्तःकरण निरोध के समय तो यो विषकी सदृश प्रतीत होताहै परन्तु थोडे दिनोंतक पीछे तो सदा अमृतकी सदृशहै १. इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संबन्ध होनेसे अर्थात् खाने देखने मैथुनादिसे जो सुख होताहै सो रजोगुणी उस क्षणमें तो अमृतकी सदृश प्रतीत होताहै पीछे तो बिषकी सदृशहै २. निद्रा आलस्य मनोराज्यादिसे जो सुख होताहै सो तमोगुणी वह इसलोक का न परलोक का केवल आत्माकूं मोहनेवालाहै तात्पर्य इसलोक स्वर्गादिमें वा देवताओं में ऐसा कोई नहीं एक शुद्ध प्रत्यंगात्मा के बिना कि जो इन गुणोंसे रहितहो त्याग ज्ञान बुद्धि धैर्य श्रद्धादि सत्त्वादि भेदसे गीताशास्त्रमें भले प्रकार लिखेहैं और जितना भेद ऊपर लिखा है उनकाभी अर्थ गीतादि के श्रवण से निश्चय होसक्ता है जितनी वेद-शास्त्रोंकी आज्ञा है कि यो करना यो न करना सबका तात्पर्य यों है कि जिसके करनेसे रज तमोगुण बढतेहैं वह काम न करना और जिसके करनेसे सत्त्वगुण बढता है वह काम करना बुद्धिमानको विचारना चाहिये कि प्रातःकालादि स्नान ध्यानादि करनेसे रज तमोगुण का नाश होताहै वा नहीं जो जाने कि होता है तो सदा जैसे बने वैसेही

शास्त्र विहित कर्मोंको करना योग्यहै जिस कालमें रजतमोगुणकी वृत्तियोंका तिरस्कार और सत्त्वगुण-की वृत्तियों का आविर्भाव भले प्रकार होजावेगा उस कालमें यो मेरेकूं करना योग्यहै यो अयोग्य है यो रस्ता बन्धदुःखादिका है यो रस्ता सुख मुक्तिका है सब जान जा-वेगा और वशिष्ठ व्यासादि कं जो यो समर्थहै सब भूत भ-विष्यत्काल की व्यवस्था कहदेनी यों सत्त्वगुणका प्रताप है जिसके जितना सिवाय सत्त्वगुण होगा उसके उतनाहीं सिवाय प्रकाश होगा तात्पर्य सत्त्वगुणके बढानेसे सिद्ध स्वर्ग लक्ष्मी आदि भी प्राप्ति होनी बहुत सहजहै और सत्त्वगुणके बढनेसे ज्ञानद्वारा मुक्त होजाता है यों मुख्य फल है ॥

इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यांपञ्चमोऽध्यायः॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः।

प्रथम साधन अवस्थामें कर्म उपासना करनी योग्य है ज्ञान म समुच्चय न करना अर्थात् कर्म उपासना ज्ञान तीनों मिलकर मुक्ति होतीहै ऐसा न विचारना श्रीशंकरा-चार्य महाराजने गीताभाष्यादि ग्रन्थोंमें सब समुच्चय-का खण्डन भले प्रकार प्रमाणपूर्वक कियाहै तात्पय इस बात कूं सिद्ध किया है केवल ज्ञान से मुक्ति होतीह ज्ञानकूं

कर्मउपासनाकी इच्छा नहीं कर्म उपासना कूं ज्ञान की इच्छा है तात्पर्य विना ज्ञान कर्मउपासना से मुक्ति नहीं होती यहां भी इसी बात कूं सिद्ध करते हैं केवल ज्ञानसे मुक्ति होतीहै। शंका । तप योग यज्ञ स्नान व्रतादि का फल मुक्ति सुना जाताहै उनकी क्या गति होगी। उत्तर । तप योगादि परम्परा करके मुक्ति के साधन हैं ज्ञान तो साक्षात् स्वतंत्र मुक्ति का साधन है योही बात श्रीरामचन्द्रजीने भी लक्ष्मणजीके प्रति रामगीता में कही है वे जो कर्म उपासनावाले केवल कर्मउपासनासे मुक्ति कहतेहैं उनसें बूझना योग्यहै कि वेदकी हजारों श्रुति अद्वैतपर हैं उनकी क्या गतिहै कर्मउपासनावाले जो बूझे कर्मउपासनापर जो हजारों श्रुतिहैं उनकी क्या गतिहै इस प्रश्नके उत्तर में ब्रह्मवादी तो यों कहतेहैं कि कर्मकरनेसे अन्तष्करणशुद्ध होताहै उपासनासे चित्तकी एकाग्रता होती है यों उनका परम प्रयोजन है फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है। तदुक्तम् ॥
धर्मसे विरति योगसे ज्ञाना। ज्ञानसे मोक्षपद वेदबखाना॥
यों शास्त्रार्थदिग्विजय शारीरकभाष्यादि ग्रन्थों में बहुत है जो बहुत चर्चा करे वह उन ग्रन्थों का श्रवण करे यहां सिद्धांत लिखते हैं केवल ज्ञान मुक्तिका साधना है उसमें यों दृष्टांत है जैसे पाकक्रियामें लकडी जल वर्तनादि परम्परा करके गौण साधन है ऐसेही कर्मउपासना मुक्ति को गौण साधनहै ज्ञान तो साक्षात् मुक्ति का साधन है जो ऐसी

शंका करे पाकक्रियामें अग्नि गौण रहो जल बर्तनादि मुख्य हैं दृष्टांत में यों आया कर्म मुख्य है ज्ञान गौणहै।उत्तर उसका यों है अविद्या और कर्मका विरोध नहीं कर्मभी जड अविद्या भी जड है अन्धकार कूं अन्धकार नहीं दूर कर सक्ता विद्या ज्ञानरूप है योंही ज्ञान अज्ञानकूं दूरकर सक्ताहै जैसे प्रकाश अंधकारकूं इस हेतुसे ज्ञान गौण नहीं होसक्ता । तदुक्तम् ॥ हुयेज्ञान वरु मिटे न मोहू । तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू । शंका । कर्मगौण रहो ज्ञान मुख्य रहे उपासना कहां गई । उत्तर । जो ऐसी उपासनाहै कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् अभेद उपासना का तो ज्ञानमें अन्तर्भाव है और दासोहम् अर्थात् भेद उपासना का कर्ममें अन्तर्भावहै इस प्रक्रिया में ज्ञान कर्म दोही हैं । शंका । आत्मा तो सब शरीरों में परिच्छिन्न प्रतीत होताहै आत्माकूं पूर्णता कैसेहै । उत्तर । परिच्छिन्नवत् आत्मा अज्ञानसे प्रतीत होताहै अविद्याके नाश होनेसे आत्मा पूर्ण जैसाहै वैसाही प्रतीत होने लगता है जैसे सूर्यके आगे बादल होनेसे वा मंदिर आदिकी उपाधिसे धूप परिच्छिन्न प्रतीत होतीहै बादल मकानकी उपाधि दूर होनेसे पूर्ण प्रकाश होजाता है जो आत्माजीव अज्ञान का जो कार्य देहादिमें अहंबुद्धि इस करके आपकूं कर्त्ता भोक्ता मानकर मला होरहाहै ज्ञानके अभ्याससे निर्मल होजाताहै । शंका । जो ज्ञान बना रहा तो अद्वैत-की असिद्धिहै । उत्तर । ज्ञानके

अभ्याससे प्रगट होता है जो वृत्तिज्ञान सो अज्ञानकूं नाश करके और आत्माकूं निर्मल करके आपभी नाश होजाती है जैसे कतकरेणु जलके मलकूं दूर करके आपभी नाश होजातीहै।शंका। आत्मा ज्ञान रूपहै वहां अज्ञान कैसे रहा । उत्तर । ज्ञान स्वरूप आत्मा अज्ञानका विरोधी नहीं वृत्ति ज्ञान अज्ञान का विरोधीहै जैसे बांसमें अग्नि रहती है परंतु उस की विरोधी नहीं मथन करनेसे उत्पन्न होती है जो अग्नि सो विरोधी है। शंका।यो संसार प्रत्यक्ष दीखताहै इसकूं झूंठा कैसे कहतेहो। उत्तर। संसार स्वप्नकी तुल्यहै जैसे स्वप्न अपने कालमें सत्यवत् प्रतीत होताहै जाग्रत में असत्यवत् प्रतीत होताहै सत्य असत्यवत् प्रतीत होताहै परमार्थ में दोनों प्रकार नहीं और जैसे देखने मैथुनादिसे जाग्रतमें दुःख सुख होताहै वैसाही स्वप्नमें दुःख सुख होताहै और जैसे स्वप्नके पदार्थ अनित्य हैं वैसेही जाग्रतके पदार्थ अनित्यहैं तात्पर्य भ्रान्तिकालमें जबतक जगत् सच्चा सा प्रतीत होताहै कि जबतक अपना स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्मसे अभिन्न सबका अधिष्ठान नहीं जाना जैसे रजतकी जबतक भ्रमसे प्रतीतहै तबकत शुक्तिके विशेष गुण नील पृष्ठ त्रिकोणादि नहीं निश्चय किये सत् चित् रूप आत्मामें सब प्रपञ्च कल्पित है जैसे सोने में झूमके बाली आदि कल्पितहैं और जैसे घटमकानादिकी उपाधिसे महाकाश पृथक् २ घटाकाश मठाकाश बनीवच्छिन्न वृक्षावच्छिन्न आ-

काश कहाजाताहै ऐसेही आत्मा देहोंकी उपाधिसे परिच्छिन्न कहाजाताहै और जैसे जब घटमकानादिका नाश होजावे तो केवल महाकाश रहजाता है ऐसे देह समूह अविद्या के नाशहुए आत्माभी पूर्ण रहजाता है सत्त्व तम रजोगुणो-की नानाउपाधिसे जाति वर्ण आश्रमादि आत्मामें कल्प रक्खेहैं जैसे जल; स्वभावसे मीठा श्वेतहै उपाधिसे खट्टे न-मके लाल पीलेकी उसमें कल्पना कीजातीहैं स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों उपाधियों से आत्मा पृथक् जानना चाहिये जैसे शुद्ध स्फटिक रक्त पीत रंगके योगसे वैसाही प्रतीत होता है जैसे धानों कूं मूसले से कूट पिछोड़ कर चावल पृथक् कर लेतेहैं ऐसे पंचकोशरूपी भूसीकूं दूरकरके वि-चाररूप जो पिछोड़ना इस युक्ति करके आत्माको पंच-कोश तीनशरीरसे पृथक् शुद्ध जानना चाहिये । शंका । तुम आत्माकूं सर्वगत कहतेहो सारे तो नहीं दीखता । उ-त्तर । आत्मा सब कालमें सर्वगतहै परंतु शुद्ध बुद्धिकी वृत्तिमें प्रतीत होताहैजैसे प्रतिबिम्ब सारेहै परन्तु स्वच्छ पदार्थ दर्पण जलादिमें प्रतीत होताहै देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृति इनसे आत्मा विलक्षणहै ये सब दृश्यहैं उनका जो द्रष्टा साक्षी सो आत्माहै । शंका । तुम आत्माकूं निर्विकार कहते हो आत्मा तो विकारवाला प्रतीत होताहै क्योंकि मैं चलताहूं मैं बोलताहूं ऐसे२व्यापार से व्यापारी दीखताहै उत्तर।पृथक्२जो इन्द्रिय मन प्राणादि ये पृथक्२अपने अप-ने विषयोंमें अपनी अपनी क्रिया में जोप्रवृत्त होतेहैं उनकेसा-

थ आत्माभी व्यापारीवत् विना विवेक मूर्खोंकूं प्रतीत हो-
ताहै जैसे बादलके चलते हुए बालक कहताहै कि चन्द्र
चलताहै बालकके तो योंही निश्चयहै परन्तु विचारवानकूं
भी भ्रान्ति से चन्द्रका चलना प्रतीत होता है और जस
नाव में बैठेहुए गंगाके तीरके वृक्षादि चलते हुए प्रतात
होते हैं ऐसे आत्मा भी व्यापारीवत् प्रतीत होताहै देह
इन्द्रिय प्राणमनआदि सब जड़ पदार्थ हैं आत्मा चतन्यकूं
आश्रयकरके अपने अपने अथ म प्रवृत्त होतेहैं जैसे सूर्यके
निकलनेसे मनुष्यादि अपने २ काम में लगते हैं देह इ-
न्द्रिय गुण कर्मादि अमल सत् चित् आत्मा में विवेकके
विना अभ्यास कर रक्खेहैं जैसे आकाश म नीलता
मनादि की उपाधि अर्थात् मैं कर्त्ता भोक्ताहूं य अज्ञान-
से आत्मा में कल्प रक्खेहैं जैसे जलका चलनाचन्द्र में
कल्प रक्खा है राग इच्छा सुख दुःखादि बुद्धि के हुएहुए
प्रतीत होते हैं सुषुप्ति में बुद्धि लय होजाती है वहां नहीं
प्रतीत होते इसलिये रागादि बुद्धिके धर्म हैं आत्मा के नहीं
जसे सूर्यका स्वभाव प्रकाश, अग्निका उष्ण स्वभाव, ज-
लका शीत स्वभाव है ऐसे नित्य निर्मल आत्मा का सच्चि-
दानन्द स्वभावहै । सत् चित् आनंद ये तीन पदहैं । शास्त्र-
में ये तीनों मिलकर एक सच्चिदानन्द ऐसा बोलने में
आता है सत् जो तीनों काल भूत भविष्यत् वर्तमान में
प्रतीत होते हैं सुषुप्ति में बुद्धि लय होजाती है वहां नहीं

एक रस बना रहता है भाषामें सत्कूं है कहते हैं और घटपटादि में जो है यों शब्द प्रतीत होताहै सो आत्माही का अंश है यह बात दूसरे अध्याय में जहां अस्ति भाति प्रिय का प्रसंग है वहां भलेप्रकार सिद्ध कर आये हैं आर चित् चैतन्यरूप, ज्ञानरूप प्रकाशरूप परन्तु ऐसा प्रकाश न समझना जैसा अग्नि सूर्यादिका है क्योंकि ये तो स्वप्नसुषुप्ति में एक भी नहीं ऐसे समझो जिसके प्रकाश से जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के पदार्थों का भान होता है अर्थात् जिस प्रकाश करके रूपादि मनादि सुख अज्ञानादि जाने जाते हैं जाग्रत अवस्था में भी आत्मा के प्रकाश के बिना कुछ नहीं प्रतीत होसक्ता परन्तु सूर्यादिकाभी प्रकाश है और स्वप्न सुषुप्ति में तो केवल आत्माहीका प्रकाश है इस हेतु से वहां भले प्रकार प्रतीत होताहै कि आत्मा का यों प्रकाश है आत्मा स्वयंप्रकाश स्वप्नमें भले प्रकार प्रतीत होसक्ता है और आनंदरूप जो कि सबसे सिवाय प्यारी वस्तु है उपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी का संवादहै–हे मैत्रेयी ! धन आत्मा के लिये प्यारा, पुत्र आत्माके लिये स्त्री आत्माके लिये तात्पर्य सब पदार्थ आत्माके लिये प्यारे हैं, जो सब पर विपत्ति पड़े तो प्रथम अपने शरीर की रक्षा करता है और ब्रह्मानन्दके लिये शरीर इन्द्रिय प्राण का भी नाश करदेता है इसी हेतुसे प्यारा आत्माहै वोही आत्मा आनन्दरूपहै वह आनन्द रूप रजतमोगुण की वृत्तियों में दब रहाहै ।

इस आनन्दस्वरूप का पंचदशी ग्रंथ में ब्रह्मानन्द के ५ अध्याय हैं योगानन्द, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्द ये हैं नाम जिनके उनमें भले प्रकार निश्चय होसक्ता है। शंकाः- आत्मा तो निर्विकारहै बुद्धि जडहै मैं जानता हूं यों किसका धर्म । उत्तरः—आत्मा का सत्चित अंश और बुद्धि की वृत्ति ये दोनों जुड़कर विवेक के बिना यों व्यवहार होता है कि मैं जानता हूं आत्माकूं जीव जानकर भय कूं प्राप्त होता है और जब यों जाने कि मैं जीव नहीं परमात्माहूं तब निर्भय होजाताहै जैसे जबतक रज्जुमें सर्पजानता रहेगा तबतक निश्चय भय रहेगा। वेद बारम्बार कहते हैं जो जीव ब्रह्ममें किंचित् भी भेद करेगा उसको बड़ा भय होगा बिचारो जो जीव ब्रह्ममें भेदहै तो पूर्णब्रह्म कैसेहै जो एक से भेद हुआ तो अनेक जीव पशुपक्षी देवता यक्ष आकाशादि से सबसे भेद हुआ तो जैसे और है ऐसेही ब्रह्म भी एकदेशी हुये और रामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र विष्णु, शिवादि मूर्ति तो परमेश्वर की मायामयहैं वास्तव नहीं इस बातकूं परमेश्वरने अपने मुखसे कहा है । हे लक्ष्मी ! यो मेरा शरीर मायामय है सात्त्विक नहीं पद्मपुराण में गीताजी के माहात्म्यमें लक्ष्मीनारायणका सम्बादहै और गीताशास्त्र में परमेश्वर कहतेहैं मुझ अव्यक्त कूं जो व्यक्तिवाला जानते हैं वे मूर्ख हैं। जब कि परमेश्वर आप ऐसा कहते हैं कि विवाद की

चातहै परन्तु मूर्ख अपनी मूर्खतासे सच्चिदानन्द एकरस पूर्ण ब्रह्मकूं परिच्छिन्न एकदेशी कहैंगे अर्थात् वैकुण्ठ, कैलास, मथुरा, अयोध्यावासी कहैंगे और परमेश्वरके सद्भाव में ऐसी ऐसी चर्चा करेंगे कि कृष्णचन्द्र ने गोवर्द्धन उठा लिया इस हेतु से कृष्णचन्द्र परमेश्वरहैं और जो श्रुति, स्मृति, युक्ति हजारों परमेश्वरके सद्भाव में प्रमाण हैं कि जिन युक्तियोंसे नास्तिकों के मत खण्डन किये जाते हैं जो नास्तिक वेदकूं न परमेश्वर कूं न परमेश्वर के वाक्यों कूं मानता है उसका मत केवल युक्ति करके खण्डन होताहै। मूर्ख उन युक्तियों कूं तो जानते नहीं ऐसी तुच्छ युक्ति देते हैं जिस कूं बालक भी खण्डन करदे गोवर्द्धनके सिवाय कैलास रावणने उठालिया है और हजारों राजा पुराणों में प्रसिद्ध हैं जिनके रथके पहियेके समुद्र बनेहुए हैं। क्या वे परमेश्वर थे और परमेश्वर ने रावणमारा कंसमारा और अनेक जय करी यो परमेश्वर की क्या स्तुति है अर्थात् निन्दाहै क्योंकि जो परमेश्वर करने कूं न करने कूं औरका और करदेने कूं समर्थ हैं क्या वे ऐसी ऐसी उपाधि करके नाना प्रकार का अपने ऊपर दुःख उठाकर औरों से सहाय ले ले जय करते तदुक्तम्–दोहा। प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति अस आहि। जो मृगपति वध मेडुकन, भलो कहै को ताहि॥ चौपाई॥ भवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥ सो महिमा समुझत प्रभु

केरी । जो वरणत हीनता घनेरी॥ और प्रसिद्ध है कि चक्र-वर्ती राजा कूं एक देशका राजा कहना षट्शास्त्री कूं दो चार पोथी का पढ़ाहुआ कहना चार पुत्रवाले कूं एक पुत्रवाला कहना कितना अनर्थ है और जो यों कहो कि व्यासदेव वाल्मीकि जी आदिने क्यों परमेश्वर की ऐसी ऐसी स्तुति लिखी हैं सो सुनो जो परमेश्वर कूं सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म नित्यमुक्त एकरस असंग ऐसा विचारने कूं समर्थ नहीं योंही जानता है जैसे मैं उत्पन्न हुआ हूं मेरे माता पिता स्त्रियादि हैं ऐसेही परमेश्वर माता पिता स्त्रीवाले होंगे और जैसे इस लोकमें शरीर मकान उपवनादि सुन्दर सुन्दर जिसके होते हैं और जो शत्रुओं कूं मार मार आप जय कूं प्राप्त हो ता है उसकूँ मूर्ख लोग बडा कहते हैं इसलिये उन मूर्खोंके लिये व्यासादिजीने परमेश्वर की ऐसी ऐसी स्तुति लिख दी और विचारवानोंके लिये वेदान्तमें जो स्वरूप परमात्माका निश्चय कियाहै उसकी स्तुति लिखी है विचार देखो यो कुछ विरोध की बात नहीं जब मूर्ख भेदवादी वेदान्त की ऐसी ऐसी युक्तियों में दब जाते हैं उत्तर नहीं देसक्ते तब यों बकने लगते हैं--अजी ज्ञान बड़ा कठिन है । कलियुग में ज्ञान नहीं होता और जो ब्रह्मवादी ज्ञानी विशेष करके संन्यासी हैं उनकूं कहते हैं कि कलियुग में संन्यासवर्जित है उनसे बूझना चाहिये श्रीमत्परम हंसपरिब्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्य महाराज शिवजी का

अवतार पद्मपाद परमेश्वराचार्य्य हस्तामलक आनन्दगि-
रिजीसे आदि लेकर बहुत ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं और बहुतसे
इस समय में प्रत्यक्ष हैं और श्रीशंकराचार्य महाराजकूं भी
कोई दोहजार वर्षवीते हैं जब कलियुग था वा नहीं और
जो कलियुगमें शुचि ज्ञान नहीं होता तो व्यासजीने पुरा-
णोंमें इतिहासोंमें भलेप्रकार सूत्रोंमें और श्रीकृष्णचन्द्र
महाराज ने गीताशास्त्र में ज्ञान क्यों कहा और प्रथम अ-
ध्यायमें गीता भाष्यादि ग्रन्थों का नाम हम लिख आयेहैं
वे ग्रन्थ उन्होंने क्यों बनाये और जो यों शंका करे कि हरि-
का नामही २ मेरा जीवन है और अन्यथा कलियुग में
नहीं २गति और जो केवल बोधके लिये प्रयत्न करते हैं
वे केवल तुष कूटते हैं ऐसे२वाक्यों की क्या गति। उत्त-
रः—ऐसे२वाक्य कि कलियुग में ज्ञान नहीं होता ये वाक्य
जो किसी जगह नाम माहात्म्य की प्रशंसा वा भक्तिकी
प्रशंसा वा कर्मादि की प्रशंसा में व्यासादिने जो कहेहैं क्यों
कि व्यासादि कवियोंका यो नियम है जिस देवता वा
भक्ति आदिकी प्रशंसा करते हैं वहां योंही कहते हैं कि जोहै
यों ही है तो वो कहना उनका मूर्खोंके लियेहै और जो
यो न माने तो ऊपर जो हमने प्रश्न कियेहैं कि, उन्हों ने
ज्ञान क्यों कहा उसका उत्तर दो तात्पर्य प्रथमही हम
तीसरे अध्यायमें लिख आये हैं कि मूर्ख वेदशास्त्रके

एक २ देशकूं सुनकर वा अपने मतका हठ करके वृथा वाद करते हैं बुद्धिमानको वेद शास्त्रोंका सिद्धान्त निश्चय करना यो सिद्धान्त है । कोई महात्मा यह कहते हैं कि हम आधे श्लोकमें वो बात कहेंगे जो कोटि ग्रन्थोंने कही है सोई आधे श्लोक में कहते हैं 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है जो यो सच्चिदानन्द लक्षणवाला जीवहै सोई ब्रह्म है अपर कोई ब्रह्म नहीं योही ज्ञान मुक्तिका हेतुहै ॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

श्रीशंकराचार्य महाराजने हस्तामलकाचार्य्यसे प्रश्न किया कि तुम कौनहो इसका उत्तर श्रीहस्तामलकाचार्य कहते हैं मैं मनुष्य, देव, यक्ष, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यासी; इनमें कोई नहीं निज बोधस्वरूप हूं फिर उन्होंने दृष्टान्त देदेकर कृपा करके जो औरोंकूंभी बोध होजावे इसी अर्थकूं सिद्ध किया हम भी उसी अर्थकूं संक्षेप करके इस अध्यायमें लिखेंगे औरभी दृष्टान्त युक्ति लिखेंगे जैसे मनुष्यादि का व्यवहारमें प्रवर्त्तहोना इसमें निमित्त सूर्य नारायणहैं ऐसे देह मन प्राण बुद्धि आदिकी प्रवृत्ति चेष्टामें जो निमित्त है और परमार्थत्व रूप करके तो कोई उपाधि द्रष्ट दृश्यादि जिसमें नहीं केवल आकाशवत् पूर्व एकरस है

सो नित्य प्राप्त स्वरूप आत्माहै स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों पंचकोशोंसे पृथक् अवस्थाका साक्षी सच्चिदानन्दरूप जो है सो आत्मा है। शंका-जैसे और पदार्थ आकाश पृथिवीआदि इन्द्रिय मनबुद्धि आदि करके निश्चय किये जाते हैं ऐसे आत्मा तो नहीं जाना जाता। उत्तर-इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकूं आत्मा प्रकाशताहै जैसे दीप घटादिकूं बुद्धिआदि जड़ पदार्थोंकरके आत्माका कैसे निश्चय होसक्ता है आत्मातो स्वयंप्रकाश है आत्माकूं अपने जाननेमें इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकी इच्छा नहीं जैसे दीपकके जाननेमें और दीपकी इच्छा नहीं चिदाभासके अर्थ जाननेके लिये प्रथम दृष्टान्त लिखतेहैं महाकाश १ घटाकाश २ घटमेंजल ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दृष्टान्त में समझो शुद्धचैतन्य १ कूटस्थ २ अन्तःकरण ३ जीव ४ इसीका नाम चिदाभास है अर्थात् चैतन्यवत् प्रतीत हो परन्तु चैतन्य के लक्षण करके रहित हो जीवका जो अधिष्ठान अर्थात् जीव जिसमें कल्पित है और कूटवत् निर्विकार ठहरा रहे सो कूटस्थ जीवका लक्षण यों है अधिष्ठान जो चैतन्य और सूक्ष्म शरीर और चैतन्य की जो छाया सूक्ष्मशरीर में इन सबका संग जीव कहा जाताहै और महाकाश १ घटाकाश २ अभ्राकाश ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दार्ष्टान्तिक में समझो शुद्धचैतन्य १ कूटस्थ २ ईश्वर ३ जीव ४

और वोही चैतन्य ऐसे ६ प्रकार का है शुद्धचैतन्य १ सा-
क्षी २ प्रमातृ ३ प्रमाण ४ प्रमेय ५ फल ६ उपाधिरहित
शुद्धचैतन्य १ अविद्योपहितसाक्षी २ अन्तःकरण विशिष्ट
प्रमातृ ३ अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्न प्रमाण ४ घटावच्छिन्न
चैतन्य प्रमेय ५ अन्तःकरणवृत्त्याभिव्यक्त चैतन्य सो फ-
ल चैतन्य दृष्टान्त इसमें तालाब गूलकेदार का है यों वि-
षय भाषा में भले प्रकार नहीं लिखा जाता जो विस्तार
करके लिखें भी तो इसका समझना कठिन है और जो
समझ सक्ताहै वो भाषा क्यों पढे सुन्दरशास्त्र पढे सुने प्र-
त्यक्ष प्रमाण में और परमात्मा बुद्धि आदि का किस प्र-
कार ते विषय है और किस प्रकार विषय नहीं इसबात के
जानने में इस विषय का जानना अवश्य चाहता है इस
लिये यों विषय वेदान्त शास्त्रार्थ के जाननेवालों से श्रवण
करना योग्यहै जो इस ग्रन्थ कूं पढावें सुनावेंगे वे अवश्य
इस विषय कूं भी जानते होंगे हमने तो प्रसंग चिदाभास-
के अर्थ जाननेके लिये लिख दियाहै जैसे मुखका आभा-
सक मुखका जनानेवाला जो दर्पण में दीखता है वो मुखसे
कुछ पृथक् वस्तु नहीं ऐसे बुद्धि में जो चिदाभास है वो
चैतन्य से पृथक् कुछ वस्तु नहीं उसका तो अधिष्ठान कू-
टस्थ रूप सो नित्य प्राप्त आत्माहै जैसे दर्पण के अभाव-
में आभासकी हानि हुए सन्ते एक मुख प्रतीत होता है
वहां कुछभी कल्पना आभास्य अभासक द्रष्टा दृश्य बि-

म्ब प्रतिबिम्बकी नहीं होती ऐसे ज्ञानके नाश हुए संते कार्य उसका बुद्धि है बुद्धिका नाश हुए सन्ते जो निराभासक त्रिपुटीरहित वस्तुहै सो आत्मा है ध्याता, ध्यान, ध्येय-प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय—ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इसकूं त्रिपुटी कहते हैं मन इंद्रिय आदिसे पृथक् मन इन्द्रिय आदिका आदि मन इंद्रिय आदि करके जो अगम्य सो आत्माहै सब जीवोंकी बुद्धि में जो एक चैतन्य अपने आप शुद्धरूप ऐसे भानहोताहै कि जैसे अनेक जलके घटों में एक सूर्य प्रतिबिम्ब करके भान होताहै सो आत्माहै ❀जैसे एक सूर्य अनेक नेत्रोंकूं क्रम करके नहीं प्रकाशता ऐसे आत्मा ज्ञानस्वरूप अनेककूं क्रम करके नहीं बोध करता। शंका—जो एक चैतन्य सब शरीरों में है तो यज्ञदत्तादि के दुःख सुख देवदत्त क्यों नहीं अनुभव करता। उत्तर—अविद्याकी उपाधिसे जिस शरीर में जिस जगह विशेष अध्यास है यहींके दुःखादि अनुभव होसक्ते हैं और जगहके नहीं होसक्ते जैस जिसकूं योंही निश्चय है कि इस शरीरमें चैतन्य और है यज्ञदत्तादि के शरीरोंमें और चैतन्य है तो उसकूंभी एक काल में शरीर फूटने का दुःख और पलँगपर सोने का सुख और भी अनेक दुःख सुख अनुभव नहीं हो सक्ते जिस कालमें जहां अन्तःकरण की वृत्ति होगी उसीजगहका दुःख सुख प्रतीत होगा और जगह का नहीं होगा जो दूसरे शरीर में अध्यास होगा तो संदेह यज्ञदत्तादि के दुःख सुख प्रतीत

होंगे जैसे मित्र पुत्रादि में अध्यास होताहै तो इनके दुःख सुख-
में जो कहताहै कि मैं दुःखी सुखीहूं और यों विचारना चा-
हिये कि जो प्रथम शरीर में चैतन्य था वोही इस शरीर-
में है फिर पूर्वजन्मके दुःख सुख क्यों नहीं प्रतीत होते
तात्पर्य जब एक शरीर में यों व्यवस्था है जो अन्तःकर-
णकी वृत्ति नेत्रके साथ लगीहुई है तो रूपही का ज्ञान हो-
ताहै समीप बैठे कुछ कहाकरो किंचित् नहीं सुनता इसी
प्रकार सब जगह कल्पना करलेनी हजारवस्तु घरमें खाने
पहरने देखने की रक्खीहों जिस जगह अन्तःकरणकी वृत्ति
है वोही दुःख सुखकी हेतुहै जब कि एक शरीरके दुःख सुख
एक समय होनेवाले उनका एक कालमें अनुभव नहीं
होसक्ता फिर अनेक शरीरों का कैसे दुःख सुख
अनुभव होसके । शंका—अष्टावधानी तो उत्तर देना
चौसर खेलनी आदि ऐसे ऐसे ८ काम एक समय किया
करताहै और दूसरे जो एक बालिश्त चौड़ा लम्बा खजला
है उसकूं दांतों से कुतर २ जो खाता है तो शब्द स्पर्श
रूपरस गन्ध उसकूं एक कालमें प्रतीत होताहै और तीसरे
कोई कहता है कि मैं चन्द्र तारोंकूं एककाल में देखता
हूं इसका उत्तर दो । उत्तर—मूर्ख यों बात कहता है मैं
एक कालमें सबकूं अनुभव करताहूं उसकूं मनकी गति-
की खबर नहीं मन ऐसा चंचल है एक क्षण नहीं लगने
पाता; प्रथमपदार्थ कूं अनुभव करके दूसरे पदार्थ में प्रवृत्त

होजाता है इस बात कूं सूक्ष्मदर्शी जानते हैं और सुनो यो प्रसिद्ध है कि वाणी आदि इन्द्रिय विना अन्तःकरण विशिष्टचैतन्यके युक्तहुए किसी क्रियामें प्रवृत्त नहीं होसक्ते देखिये पुरुष पाठ जप भी करता है और अनेक मनोराज्य भी करता है विचारना चाहिये उसके मुखसे श्लोक मंत्र जो उच्चारण होताहै तो चैतन्यविशिष्ट मनका वाणीके साथ संयोगहै वा नहीं जो कहो कि संयोग है तो मनोराज्य कौन करताहै और जो कहो संयोग नहीं तो वाणीजड़है उसमें क्रिया कैसे होतीह तात्पर्य व सन्देह प्रतीत होताहै मनकी गति बहुत चंचल है मनमनोराज्य भी किये जाता है और वाणी के साथ मिलकर उस विषयकूं भी अनुभव किये जाता है मूर्ख योंहीं जानता है कि मेरा मन पाठजपमें नहीं लगा जिनकूँ अपने मनकी भी खबर नहीं उनसे ऐसी ऐसी शंका रहती हैं इस उत्तर में तीनों प्रश्नका उत्तर है॥

श्रीशंकराचार्य भगवान् कहतेहैं कि यो जो जगत दीखता है यो क्याहै क्या इसका रूपहै यो कैसे हुआहै इसका क्या हेतुहै यों बुद्धिमान को कभी नहीं चिन्तवन करना फिर क्या चिन्तवन करना चाहिये यो माया भ्रांति इन्द्रजाल है यों चिन्तवन करना चाहिये जैसे किसीके पैरमें कांटा लगजावे तो वो यो न विचारे कि मेरे यो कांटा कौनसे मुहूर्तमें लगाहै कौनसे पेड़का है यहां कैसे आया

ऐसा२ चिन्तवन न करै जैसे बने उसके निकालनेका उपाय करै ऐसेही संसारकी निवृत्तिका उपाय करे जैसे एक सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक जलके घटों में है जो घटकूं लेकर चले तो सूर्य न तो उसके साथ जाताहै न कँपता है ऐसे आत्मा ज्ञानस्वरूप शरीर इन्द्रियादि की क्रियामें वो क्रियावाला नहीं जैसे ढक गई है बादल से दृष्टि जिसकी वो यों मानता है कि सूर्य छिप गये ऐसे अविद्याकी उपाधि से यों पुरुष आपकूं वृथा बँधाहुआ मानता है और जैसे किसी बन्दर ने घटमें हाथ डालकर दोनों हाथ में अन्न भरकर मूठी बन्द करली पीछे वृथा अज्ञान से चीची किल किल करे हैं विचारो उसकूं किसने बन्धन कियाहै और सुनो कोई तोतेके पकड़ने के लिये मैदानमें तो चुगा डालदेता है और दो बांस खड़े करके बीच में उसके नलकी जैसी पंखे में होती लगा देताहै नीचे उस नलकी के किसी पात्र में जलभर देताहै तोता चुग्गे के लालच आताहै प्रथम नलकीपर आनकर बैठता है उस नलकी का नियम है उसके ऊपर जानवर बैठा और वो फिरी और जानवर उलटा हुआ जो वो जानवर छोड़कर भाग जावे तो कुशल है नहीं तो यों हाल होताहै कि जब तोता उस नलकी पर आनकर बैठा और वो फिरी तोतेने जाना यो मेरा आश्रय है जो इसको छोडदिया तो जाने कहां गिरूंगा उसकूं वो पकड़े रहा फिर उस तोते की नीचे कूं पीठ ऊपर कूं पैर

होगये उस तोते ने जो जलकी तरफ कूं देखा तो अपना प्रतिबिम्ब जलमें प्रतीत हुआ उस तोते का अध्यासन प्रतिबिम्ब में लगगया फिर वो तोता यो जानता है कि मैं जल में डूब रहा हूं ऊपर का सबहाल भूलगया वृथा अज्ञान से चींचीं टींटी करै है विचारो उसकूं किसने बंधनाकिया है ऐसे यो कूटस्थ चैतन्यरूप अपने प्रतिबिम्ब चिदाभाससे अध्यास करके बंधनवत् होरहाहै वास्तव बंधनहीं सब जगह जैसे आकाश अनुस्यूतहै ऐसे आत्मा बाहर भीतर स्वच्छरूप अनुस्यूत है किसी वस्तुकूं स्पर्श नहीं करता और जैसे श्वेत मणि रंगकी सन्निधि होनेसे लाल पीली प्रतीत होतीहै ऐसे आत्मा अविद्या की उपाधि से करता भोक्ता प्रतीत होता है समस्त स्थूल सूक्ष्म उपाधि कूं नेतिनेति इस वाक्य से निषेध करके जैसे दूसरे अध्याय में जीव ब्रह्मकी एकता महावाक्य करके करीहै सदा वोही चिन्तवन करना चाहिये प्रथमतत्त्व पदोंका अर्थ लिख भी आयेहैं फिरभी और प्रकार करके सुनो कोई मुक्तिकी इच्छावाला तीनताप जो संसारमें हैं उन करके तपा हुआ और–

टी०। ज्वर क्रोधादि करके जो ताप सो आध्यात्मिक १, शत्रु चोर व्याघ्रादि करके जो ताप सो आधिभौतिक२, शीतोष्ण पवनादि करके जो ताप सो आधिदैवि ३॥

मू०–संसार से उद्विग्न हुआ है मन जिसका शम दमा–

दि साधनों करके युक्त सद्गुरु से बूझताहै—हे भगवन् ! जिस साधन करकेअनायासपूर्वक संसाररूप बन्धनसे मैं छूटजाऊं सो महाराज मुझकूं संक्षेप करके केवल कृपा करके कहो। उत्तर—हे साधो!तुमने बहुत अच्छा बूझा सावधानमति होकर सुनो, तत्त्वमसि महावाक्यादिसे उत्पन्न हुआ जो जीव ब्रह्म का तादात्म्यविषय ज्ञान सो मुक्ति का कारण है । प्रश्न—महाराज कौन जीव कौन ब्रह्म है किस प्रकार करके उन की तादात्म्यताहै और महावाक्य किस प्रकार करके उसको प्रतिपादन करते हैं ?। उत्तर—जीव कौन है तूही जीवहै और जो बूझताहै कि मैं कौन हूं तूहीं बेसन्देह ब्रह्म है। प्रश्न। हे भगवन् ! अबतक तो मैंने भलेप्रकार पदार्थ भी नहीं जाना मैं ब्रह्महूं यो जो महावाक्यार्थ इसकूं कैसे प्राप्त हूं। उत्तर—सत्य कहते हो वाक्यार्थके ज्ञान में प्रथम पदार्थ का ज्ञान हेतु है इसलिये प्रथम तत्त्वम् पदका अर्थ सुनो—अन्तःकरण और उसकी वृत्तियों का जो साक्षीचैतन्यघन नित्य एकरस और देहादिमें जो अहंबुद्धि इसकूं त्यागकरके आत्मारूप करके जो चिन्तवन करनेमें आता है सो आत्मा त्वम् पदका अर्थ । यो शरीररूपादिवाला होनेसे आत्मा नहीं जैसे पञ्चमहाभूतोंके विकार घटादिहैं ऐसेही प्रत्यक्ष विकारवाला होने से देह भी है । प्रश्न—जो देह अनात्मा है तो हे भगवन् ! आत्माकूं करामलकवत् साक्षात् प्रतिपादन करो । उत्तर—जैसे घटका देखनेवाला

घटसे पृथक् होता ऐसे देहका देखने वाला देह कैसे होगा और जैसे मकानमें बैठा हुआ कोई यों कहै मैं मकान हूं तो विचारो कैसी मूर्खताकी बात है ऐसे यो चैतन्यरूप असंग निरवयव है और कहै कि मैं देह हूं अर्थात् पुरुष स्त्री ब्राह्मणादि हूं विचारो इससे परे और क्या अज्ञान होगा देह तो उपलक्षण है प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदि दृश्य होने से सब अनात्मा है सबका द्रष्टा सो आत्मा है देहसे परे इन्द्रिय इन्द्रियोंसे परे मन मनसे परे बुद्धि बुद्धि से परे जो बुद्धि का साक्षी सो आत्मा आत्मा से किंचित् नहीं और सब संघात भी आत्मा नहीं होसक्ता क्योंकि द्रष्टा दृश्य विलक्षण होते हैं देह इन्द्रिय की जो चेष्टा क्रिया सें सदा उपचय अपचयवाली हैं कभी किसी प्रकार का शरीर कभी किसी प्रकार की इन्द्रिय मनादि की चेष्टा देखने में आतीहै कभी किसी प्रकार की जिस की संनिधिमात्रसे ये सब चेष्टा करते है एकरस जो इनका द्रष्टसो आत्मा है जड़ पदार्थ देहादि जिसकी संनिधिसे चैतन्यवत् प्रतीत होते हैं जैसे चुम्बककी संनिधिसे लोहा सो आत्मा है मेरा मन इस समय कहीं गया अब मैंने स्थिर किया इस वृत्ति कूं जो जानताहै सो आत्मा है जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिका होना न होना इसकूं निर्विकार हुआ जो जानता है सो आत्मा है जैसे घटका आभासक दीप घटसे पृथक् है ऐसे देहादिका आभासक देही पृथक् है देह स्त्री

पुत्र मकानादिके नष्ट होते २ तो आपकूं परमप्रेमका आ-स्पद प्रतीत होता है सोई आत्मा है जैसे सूर्य पापपुण्य का साक्षी असंग निर्विकार है इसी प्रकार साक्षी चैतन्यरूप निराकार आत्मा है और ये ६ विकार देहकेहैं जायते अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते,अपक्षीयते विनश्यति,देह इन्द्रि-य प्राण मन बुद्धि अज्ञान का लक्षी त्वम् पदका वाच्यार्थ है। अब तत्पद का अर्थ लिखते हैं—परिपूर्ण एकरस नित्या-नन्द ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर संपूर्णशक्ति-वाला जिसकूं वेद ऐसा प्रतिपादन करते हैं सो परमात्मा ब्रह्महै जो प्रपंचका कारण अन्तर्यामी कर्मों के फलका देने-वाला जगत्की सृष्टि स्थिति लय जिसके सकाशसे होते हैं सोई तत्पदका वाच्यार्थ है और एक शुद्ध चैतन्य तत्त्वम् पदों का लक्ष्यार्थ है । तत्त्वम् पदोंकी एकता दूसरे अध्यायमें जैसे लिख आये हैं वो प्रकार यहां चिंतवन कर-लेना । तात्पर्य जो तत्पद का लक्ष्यार्थ है सोई त्वम् पदका लक्ष्यार्थहै सो तू है ऐसा कहो वा तू सो है ऐसा कहोइस प्रकार गुरुने शिष्यकूं बोधन किया और कहा कि मैं ब्रह्महं यो वाक्यार्थ जतबक भलेप्रकार दृढ न हो तबतक शम दमादि साधनोंकरके युक्त हुआ श्रवण मनन निदिध्या-सनका अभ्यास नित्य प्रतिदिन करता रहे श्रवण ऐसे करे सुना जाताहै जिस समय कोई ऐसा रागगाता है मृगके मुख में जो तृण होता है सो बाहरका बाहर और भीतर का भीतर

रहजाता है दृष्टान्त में आप समझ लेना दश उपनिषद् बृहदारण्यादि भाष्यसहित शारीरकभाष्य गीताभाष्य ये तीन प्रस्थान वेदान्तके कहलातेहैं उनकूंही ब्रह्मविद्या कहतेहैं आदित्यपुराण पंचदशी आदि ग्रन्थोंका उन्हींमें अन्तर्भाव है ऐसे २ ग्रन्थोंका ब्रह्मनिष्ठोंसे श्रवण करना जबतक संशय विपर्यय भलेप्रकार न जावे तबतक बारम्बार आदिसे अन्ततक इन ग्रन्थों का श्रवण करना इसीका नाम श्रवणहै। मनन ऐसे करना—जैसे पटवा रेशमकूं सुलझाताहै ऐसेही जो श्रवण किया उस कूं एकान्तमें बैठकर चिन्तवनकरे पूर्वपक्ष साधन फलादि कूं पृथक् करे युक्ति से सिद्धांत वस्तु को पुष्टकरे इसीका नाम मननहै निदिध्यासन ऐसे करना जैसे कोई बाजारमें बैठा हुआ अपना काम कर रहा था राजा की सवारी आगे कूं चलीगई कुछ न मालूम हुआ ऐसे जो मनन करके सिद्धान्त वस्तुका निश्चय किया है कि मैं देह प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि अज्ञान का साक्षी कूटस्थ हूं इसका सदा चिन्तवन करना इसकूं तो सजातीय प्रवाह कहते हैं और जैसे प्रथम देहमें अध्यासन था कि मैं ब्राह्मणादि हूं इसका सदा चिंतवन न करना इसकूं विजातीय तिरस्कार कहते हैं इस प्रकार सजातीय प्रवाह और बिजातीय तिरस्कार सदा करते रहना इसी कूं निदिध्यासन कहतेहैं। श्रवण से अज्ञान का नाश होताहै, मनन करनेसे संशय का नाश होताहै, निदिध्यासन करनेसें विपर्ययका नाश होताहै, फिर

महावाक्यार्थ का ज्ञान भलेप्रकार दृढ होजाताहै सोई मु-
क्तिका हेतुहै ॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

नित्य यह विचार करता रहै कि यो शरीर इन्द्रियादि
अविद्या का कार्य है बुद्बुदवत् नाशवान् है मैं तो इन
से विलक्षण एकरस हूं मैं देह नहीं इसहेतु से मेरे जन्मादि
नहीं मैं इन्द्रिय नहीं इस हेतु से शब्दादि विषयों करके
मेरा संग नहीं मैं मन नहीं इस हेतुसे दुःख सुखादि मेरे
धर्म नहीं मैं प्राण नहीं इस हेतुसे भूंख प्यास मेरे धर्म नहीं मैं
तो निर्गुण निष्क्रिय नित्य निर्विकल्प निरंजन निराकार
निर्विकार नित्यमुक्त निर्मल आकाशवत् सारे व्यापक
बाहर भीतर बेसंग अचल नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध अखण्ड-
आनंद अद्वय अक्षर अजर अमर हूं श्रीशंकराचार्य
भगवान् कहते हैं इस प्रकार जो अभ्यास निरन्तर करता
रहै कि मैं इसप्रकार ब्रह्महूं तो यो अभ्यास अविद्या कार्य
के सहित हरलेता है जैसे रोगकूं औषध अभ्यास करनेके
साधन लिखते हैं ये साधन गीताशास्त्रमें लिखे हैं शुद्ध बुद्ध
करके युक्त सत्त्वगुणी धैर्यसे उसी बुद्धि कूं निश्चय करके
शब्दादिविषयों कूं त्याग करके राग द्वेष कूं दूर करके वि-
विक्त देशमें बैठकर सदा इस प्रकार भोजनका अभ्यास

करना योगशास्त्र में लिखा है दो भाग तो अन्न करके पूर्ण करे और एक जल करके और एक भाग पवन के प्रचार के लिये खाली रक्खे देह वाणी मनकूं निग्रह करे अर्थात् अपनी इच्छापूर्वक अपने२विषयमें प्रवृत्त न हो ध्यान योग जो निदिध्यासन इसीकूं मुख्य समझकर नित्य प्रतिदिन इस ध्यानयोग का अभ्यास करते रहना वैराग्य कूं आश्रय रखना अहंकार न करना कि मैं ऐसा विरक्तहूं काम क्रोध दुराग्रह कूं त्याग करके प्रारब्ध के बलसे जो प्राप्त होजावे उसीमें सन्तोष करना जो पदार्थ पराई इच्छासे आजावे उनमें ममता छोड़ कर सदा निदिध्यासन करना योगके बलसे खोटे मार्गमें प्रवृत्त न होना अर्थात् किसीकूं शाप देना किसीपर अनुग्रह करना यो न करना परमेश्वर कहते हैं इस प्रकार अभ्यास करनेवाला, जो मेरा वास्तव तत्त्वस्वरूप है उसकूं प्राप्त होजाता है समस्त दृश्यकूं आत्मामें लयकरके जैसे प्रथम अपवाद लिख आये हैं एक आत्माकूं निर्मल आकाशवत् भावना करता रहै रूप वर्णादिकूं त्याग करके परमार्थ का जाननेवाला परिपूर्ण चिदानन्दरूपकरके स्थित रहै इस प्रकार अभ्यास करते करते वृत्तिज्ञान उदय होकर अन्तःकरण के सहित समस्त अज्ञान कूं भस्म कर देता है जैसे मथन करते करते बांसमें अग्नि उत्पन्न होकर समस्त बनकूं भस्म कर देती है जैसे सूर्यके निकलनेसे प्रथम चांदना होजाता है ऐसे प्रथम मूलाज्ञान का

नाश होता है फिर थोड़े दिनोंके पीछे सब कार्य उसके स्थूल देहसे लगाकर अविद्या पर्यन्त नष्ट होजाते हैं आत्मा तो सदा प्राप्त है अविद्या करके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है जैसे अपने गलेकी माला भूल जावे फिर किसीके बतलाने से प्राप्तवत् प्रतीत होती है जैसे स्थाणु में पुरुष शुक्ति में रजत रज्जु में सर्प की भ्रान्ति ऐसे २ बहुत दृष्टान्तहैं उसी प्रकार ब्रह्मके विषय जीवता है जैसे दिक्का भ्रम सूर्यके उदय होनेसे दूरहोता है ऐसे यो वर्ण आश्रमादिकी भ्रान्ति अविद्या के नष्ट होने से आत्मा के आविर्भाव होनेसे दूर होतीहै जैसे कारण से कार्य भिन्न नहीं ऐसें जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं कोई कीट भ्रमर का ध्यान करते करते भ्रमर होजाता है ऐसे जो जीव सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म सच्चिदानन्द ब्रह्मका ध्यान करते करते ब्रह्म होजावे तो इसमें क्या कहना है जैसे किसी घटमें १० छिद्रहों भीतर उसके दीप होवे उसी दीपकी प्रभा दश तरफ कूं निकल कर परिच्छिन्न प्रतीत होतीहै ऐसे आत्मा दीपवत् शरीर घटवत् इन्द्रिय छिद्रवत् हैं जैसे उस दीपकूं छिद्र द्वारा पवन लग २ प्रभा उसकी मन्द रहतीहै ऐसे इन्द्रियद्वार विषय वासना रूपी पवन लगलग आत्मा का सच्चिदानन्द रूप मन्द सा प्रतीतहोता है इद्रियोंके रोकनेसे आत्मा सच्चिदानन्द साक्षात् प्रतीत होता है यावत् प्रारब्ध कर्म शेषहै तावत् विद्वान् उपाधि में स्थित हुआ प्रतीत होताहै

परन्तु आकाशवत् लिपायमान नहीं होता ज्ञानवान् पण्डित भी है परंतु मूर्खवत जानकर रहताहै किसी जगह वायुवत् आसक्त नहीं होता जब अविद्या का नाश होजाता है तब निर्विशेष ब्रह्ममें लय होजाता है इस लाभसे परे कोई और लाभ ब्रह्मलोकादिक नहीं इस सुखसे परे और कोई सुख चक्रवर्ती राजा इन्द्र ब्रह्मादि को नहीं इस ज्ञानसे परे कोई और ज्ञान भूत भविष्यत् आदिका नहीं इस प्रत्ययकूं रूप आत्मा कूं देखकर मूर्त्तिमान् परमेश्वरके देखने की इच्छा नहीं रहती यो रूप होकर फिर मनुष्य देवतादि रूप नहीं होता यो जो आनंद रूपहै इस आनंदके एक लेशमें ब्रह्माजी से लेकर चींटी पर्यन्त आनन्दीहै जिसकी आभा करके सूर्य चन्द्रादि भासते हैं सूर्य चन्द्रादि की आभा करके जो नहीं प्रतीत होता सोई प्रत्यगात्मा ब्रह्महै यो रूप ज्ञानचक्षु करके दीखता है कर्मचक्षु करके नहीं दीखता जैसे अंधेकूं सूर्य ऊगा हुआ नहीं प्रतीत होता तात्पर्य यो रूप अधिकारीकूं प्रतीत होता है जैसे स्त्रीसंग का आनंद तरुण अवस्था में आठ दश वर्षकी अवस्था में लडका लडकी जो उस आनंदकूं अनुभव कियाचाहे तो क्या होसक्ता है ? जिनके मैले अन्तःकरण हैं उनकूं इस रूपका साक्षात् नहीं हो सक्ता अन्तःकरण मैले होनेसे देवता गुरु वेदान्त शास्त्रमें श्रद्धाका अभाव होता है श्रद्धाके विना गुरु कृपा नहीं करते गुरुकी

कृपाके विना कभी किसीकालमें ज्ञान न हुआ न होगा श्री-शंकराचार्य भगवान् कहते हैं कि हजारों श्रुति अद्वैत ब्रह्मकूं प्रतिपादन करती हैं और यो आत्मा सच्चिदानन्द रूप भले प्रकार निरन्तर प्रकाश वालाभी है परन्तु बिना गुरूकी कृपा मैले अन्तःकरणवाले साक्षात् करने कूं समर्थ नहीं; इसलिये चाहिये प्रथम अन्तःकरण की शुद्धिका उपाय करे क्योंकि श्रीभगवान् ने भी प्रथम अर्जुनकूं ज्ञान उप-देश किया फिर कहा हे अर्जुन ! हमने तुमकूं ज्ञान उपदेश किया जो तुमकूं यो ज्ञान अपरोक्ष न हुआ हो तो अन्तः-करणकी शुद्धिके लिये निष्काम कर्मयोग सुनो जैसे सोना मैला होता है उसकूं अग्निमें तायकर शुद्ध करलेते हैं ऐसे अन्तःकरणकूं निष्काम कर्मयोग करके शुद्ध क-रना चाहिये ज्ञान की इच्छावालोंकूं प्रथम निष्काम क-र्म मुख्य है शुद्धान्तःकरणवालोंकूं समाधिसाधनमुख्यहै प्रश्न–शुद्धान्तःकरणवालेकी क्या परीक्षा है । उत्तर–जब जाने यहांके जो देखे सुने स्त्री आदि पदार्थ हैं स्वर्गा-दिके अमृतादि पदार्थ जो सुनेहैं सबकूं चित्त न चाहै दुः-खदायी जाने मुक्तिकी इच्छाहो तब निश्चय करे कि अन्तः-करण शुद्ध होगया फिर विवेक वैराग्यादि साधनों कर-के युक्त होकर यो विचार करे मैं कौनहूं यो जगत् कैसे हुआहै इसका कर्ता कौन है उपादान क्या है इसीका नाम विचार है यो देहपंचभूतोंका विकार मैं नहीं इन्द्रिय मन

बुद्धि आदि मैं नहीं उनसे कोई विलक्षणहूं और जो कि-
सीने प्रथम न्यायशास्त्र पूर्वमीमांसा वा पुराणादि पढ़े सु-
नेहों वेदांत शास्त्र न सुनाहो इस हेतुसे उसके बहुत संशय
विपर्य्यय हों तो शारीरिक भाष्य पढ़े सुने वहां भले प्र-
कार युक्ति पूर्वक निश्चय हो सक्ता है भारत भागवतादिमें
तो जिस जगह जो ज्ञान का प्रसंग है तबतो यों ही प्रती-
त होताहै कि ज्ञान मुख्य है और जिस जगह कर्म उपा-
सनादिका प्रसंगहै वहां कर्मआदि मुख्य प्रतीत होतेहैं वै-
ष्णवादि अपने २ मतकूं मुख्य बताते हैं औरोंकी असू-
या करतेहैं भागवतादिमें स्पष्ट यो नहीं प्रतीत होता कि स-
मस्त वेद भारत पुराणादिका कहां समन्वय है अर्थात्
मुख्य प्रयोजन किसमेंहै शारीरिक भाष्यमें भले प्रकार
श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टांत देदेकर और अनेक दोष भेद-
वादि आदियोंके मतोंमें दिखाकर और जिसलिये कर्म उ-
पासनादिका वेदोंमें प्रसंगहै उतने अंशकूं अंगीकार करके
यो सिद्ध कियाहै कि समस्त वेद शास्त्र पुराणादिका ब्रह्म-
में समन्वय है सब श्रुति स्मृति प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गकी
कोई साक्षात् कोई परम्परा करके ब्रह्मकूं बोधन करतीहैं
और जो यो विरुद्ध प्रतीत होता है कि कोई श्रुति कहती
है ब्रह्म मनका विषय नहीं कोई कहती है ब्रह्म सूक्ष्म मन
बुद्धि करके जानाजाताहै कहीं ऐसा सुना जाता है जब
वैराग्य होवे उसी समय संन्यास करे कहीं ऐसा सुनाजाताहै

माता पिता स्त्री आदिके त्यागमें दोषहै ऐसे २ विरुद्ध वाक्य अनेकहैं विचारनेसे विरुद्ध वास्तव नहीं क्योंकि जैसा अधिकारी देखा वैसाही उपदेश किया तात्पर्य्य सबका अविरुद्ध भले प्रकार शारीरिक भाष्यमें निश्चय हो सकाहै और मुक्तिके साधन ऐसे ऐसे सुने जाते हैं कि अन्त मुक्तिका साधन है और तीर्थ श्रीगङ्गाजी से लेकर यावत हैं उनमें स्नान करना बद्रीनारायणजीसे आदि लेकर दर्शन पाषाणादि मूर्तियोंका पूजन करना पाठ जप करना चतुर्भुजी आदिमूर्तियोंका ध्यान करना सगुण निर्गुण ब्रह्मकी उपासनासे लगाकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण मनन निदिध्यासन तक योंहीं सुना जाताहै ये सब मुक्तिके साधनहैं अर्थात् एक एकादशी के व्रत करनेसे मुक्तहो जाता है विष्णु चरणोदक पान करनेसे श्रीगङ्गाजी में स्नान करने से मुक्तहो जाताहै तात्पर्य्य सबके माहात्म्यमें योंही प्रतीत होता है कि ये सब मुक्तिके साधन हैं अब यो विचारना चाहिये मुख्य साधन कौनहै जिससे निश्चय मुक्ति हो जावे और जो किसीके यो विश्वास है कि एकादशी आदि व्रत करनेसे बद्रीनारायणादिके दर्शन करनेसे श्री गंगाजी में स्नान करनेसे निश्चय मुक्त होजाताहै फिर तृप्ति क्यों नहीं होती तात्पर्य्य मुख्य साधन मुक्तिका वेदान्त शास्त्र का श्रवण मनन निदिध्यासन है और सब परम्परा करके गौण हैं इस बात कूं भी प्रमाणपूर्वक शारीरीक भाष्यमें

सिद्ध किया है और जो कि पूर्व मीमांसावाले स्वर्गादि की प्राप्ति कूं मुक्ति कहतेहैं और कोई एकदेशी उनको कहते हैं कि नित्य सुखका प्रकट रहना मुक्ति है, सांख्यशास्त्र वाले कहते हैं देह बुद्धि आदि में अहंकारकी निवृत्ति हुए सन्ते औदासीन्य रहना क्तिहै, पुराणवाले सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्यकूं मुक्तिकहतेहैं, चार्वाक कहते हैं किसीके अधीन न होना मुक्तिहै, न्यायशास्त्रवाले कहते हैं २१ दुःखोंका अत्यन्त नाश होजाना मुक्ति है; २१ दुःख न्यायशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं अत्यन्त नाश अत्यन्ताभावकूं कहते हैं। अभाव चार प्रकार का है—प्रागभाव जो घटसे प्रथम घटका अभाव, प्रध्वंसाभाव जो घटके नाश होजाने में घटका अभाव; अन्योन्याभाव जैसे घटमें घटका अभाव, अत्यन्ताभाव जैसे शशे के सींगोंका अभाव, और अनेक ब्रह्मलोक गोलोकादिकी प्राप्तिकूं मुक्ति कहते हैं, गरुड़वाले जो कहते हैं सो तो लोकमें बहुत प्रसिद्ध है और भी अनेकमतहैं अब विचारना चाहिये मुक्तिका क्या अर्थहै इसका भी निश्चय शारीरिक भाष्यमें कियाहै कि अविद्योपाहित जीव नामा शुद्ध चैतन्य का प्रतिबिम्ब मिथ्याभ्रांतिसे आपकूं जीव मानता है अविद्याकी उपाधिसे समस्त संसार मुक्तिपर्य्यन्त कल्प रक्खाहै ब्रह्मज्ञानसे अविद्याका नाश हुए सन्ते जीव रूप भ्रांति का दूर होना यो मुक्तिहै। सर्व अनर्थों-

की निवृत्ति परमानन्दकी प्राप्ति यो ही मुक्तिका लक्षण है।
जैसे किसी घटगत जलमें जो प्रतिबिम्ब सो जलके दूर
होनेसे नाश होजाता है फिर यों नहीं कहाजाता कि
प्रतिबिम्ब कहांगया और प्रतिबिम्बके नाशहोने और न
होनेमें सूर्य कुछ और प्रकारके नहीं होजाते । दृष्टांत में
समझो कि शुद्ध चैतन्य जैसे प्रथम था वैसेही पीछे रहा
जैसे स्वप्नके खुलते हुए स्वप्नमें जो पदार्थ कल्प रक्खे
थे सब उसीसमय नाश होजातेहैं ऐसे पीछे विदेह मुक्ति
के समस्त संसार नाश होजाताहै कोई ऐसा न विचार
करै में तो मुक्त होजाऊँगा मेरे शत्रु मित्रादि और जगत्
बना रहेगा उनके पीछेके लिये यत्न करना मूर्खता है
स्वप्नके दृष्टांतकूं भले प्रकार विचारना चाहिये वेदांत
शास्त्रवालों का जो कहना है वो तो अनुभवमें भी आ-
ताहै श्रुति स्मृति आदि प्रमाण करके सिद्ध होसक्ताहै
और किसी शास्त्र पुराणादिका मत अनुभव में नहीं आ-
ता वेदों से विरुद्ध स्पष्ट प्रतीत होता है विचारो जैसे जी-
वका देहपात हुआ यमपुरीकूं वा स्वर्गकूं वा पितृलोक
वैकुंठादिकूं गया वा उसका जन्म उसी समय इसलोकमें
होगया वा गरुड़वाले जो कहते हैं या उसी की व्यवस्था
हुई और यो बात कैसे अनुभवमें आवे कि सारी अवस्था-
में तो मूर्खताके काम करे अन्तकालमें काश्यादिमें म-
रनेसे नियम करके मुक्त होजाता है जो ऐसे वाक्योंमें हठ

करतेहैं तो मुक्तिके लिये ज्ञानादिमें क्यों माथा मारते हैं कहांतक लिखें हजारों ऐसी व्यवस्था हैं सब मतवाले अपने २ मतकूं युक्ति देदेकर सिद्ध करतेहैं परन्तु समस्त व्यवस्था कोई भले प्रकार नहीं कहते क्योंकि कोई स्वर्गकूं नित्य कोई अनित्य कहते हैं। कोई 'काश्यां मरणान्मुक्तिः'। इस श्रुतिका अर्थ औरही प्रकार कहते हैं और यों भी भलेप्रकार नहीं प्रतीत होता कि स्वर्ग वैकुंठ कैलास ब्रह्मलोक गोलोकादिका कैसे भेदहै जैसे कि सातलोक भूर्भुवादिहैं उनमेंही उनका अन्तर्भाव है वा कुछ और प्रकार है अथवा जिसकूं ब्रह्मलोक कहते हैं उसीकूं वैकुण्ठ पितृलोकादि कहते हैं, जैसे यों स्थितिकी व्यवस्था है इससे सिवाय सृष्टिकी व्यवस्थाहै क्योंकि जब प्रत्यक्ष की व्यवस्था नहीं बैठ सक्ती परोक्ष की कौन बैठा सके यद्यपि यो व्यवस्था कहीं न कहीं लिखीहो परन्तु मेरे श्रवण करनेमें नहीं आई जो किसीने सुनीहो प्रमाणपूर्व्वक अनुभवमें आवे तो हमकूंभी योंही इष्टहै कि जैसे बने संशय दूरकरदेना चाहिये यथामति मैं कहताहूं किसी पक्षमें मेरी हठ नहीं यो जो व्यवस्था तो मुझकूं शास्त्रमें प्रतीत होतीहै और लोकमें यवनादि बहिश्तादि कहतेहैं और इस बातमें तो किंचित्‌भी संदेह नहीं कि परमेश्वर सबका एकहै और योभी निश्चय होताहै यमनादि भी नरक स्वर्गादिके अधिकारीहैं यो नियम

नहीं कि सब नरकहीकूं जावें क्योंकि श्रीभगवान् कह-
तेहैं सत्त्वगुणी ऊपरके लोकोंकूं प्राप्त होवेगा शम दम
संतोष दया कोमलता क्षमा दानादि सत्त्वगुण की वृत्तिहैं
उनमें दीखतीहैं इस हेतुसे निश्चय होताहै सत्त्वगुणकी
तारतम्यतासे स्वर्गादिके अधिकारीहैं तात्पर्य्य इन सबके
मतोंसे मेरी जानमें अविरोध व्यवस्था नहीं बैठसक्ती परंतु
वेदान्तशास्त्र के मतसे बैठसक्तीहै सो सुनो वेदान्त शास्त्र-
वाले ऐसा कहतेहैं कि यो जगत् अज्ञान करके कल्प रक्खा
है स्वप्नवत् मिथ्याहै जैसे स्वप्नमें एक स्त्रीके साथ एकस
मय १० पुरुष संगकरें तो दशोंका सच्चाहै विचारनेसे झूंठाहै
तदुक्तम् ॥ चौपाई ॥ देखिय सुनिय गुणिय मनमाहीं ।
मोहमूल परमारथ नाहीं ॥ अर्थात् जगत्का कारणमूल
अज्ञान ही है परमार्थमें नहीं जैसे एक रज्जु पडीहै कोई
उसकूं सर्प कोई मूत्रधारा कोई दण्ड कहतेहैं सबका
कहना भ्रान्तिकालमें सच्चा परमार्थ में झूंठाहै ऐसे भ्रान्ति-
कालमें एक ब्रह्ममें कल्पित स्वर्ग वैकुण्ठादि सब सच्चे
परमार्थसे झूठेहैं इस बातकी सिद्धिमें बहुत श्रुति स्मृति
युक्ति दृष्टान्त इतिहासादि प्रमाण हैं । वासिष्ठादि ग्रन्थोंमें
अनेक इतिहास हैं वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकूं अनेक
इतिहास सुनाकर इसी बातकूं सिद्धकिया है कई पुरुषोंनें
तप करके यो बर मांगा कि हम सब इसी कालमें ब्रह्मा
होजावें वे सब ब्रह्मा होगये और ये ब्रह्माजीभी बनेरहे और

उनके ब्रह्माण्ड सबके पृथक् २ हुए और एक ऋषिने तप-करके परमेश्वरसे वर मांगा हे परमेश्वर! आपकी माया देखूं परमेश्वरने कहा जो दृश्य पदार्थहैं सब माया है ऋषिकूं यों निश्चय रहा कि मायाशब्द करकें कोई और पदार्थहै फिर परमेश्वर से प्रार्थना करी कि महाराज नहीं घटनेके योग्य यो पदार्थ उसके घटानेमें जो चतुर वो माया देखा चहता हूं महाराजने वर देदिया कि देखोगे एक दिन वे ऋषि हृषीकेश स्थानमें गंगाजीमें स्नान करते थे गंगा-जीके तीर आसन पूजादि रखदिये ऋषिने जलमें जो डुबकी मारी सो वे ऋषि अपना ऋषिपना तो भूलगये किसी धीवरकी लडकी होगये काल पाकर उस लडकीका विवाह होगया ४० वर्षकी अवस्थामें कई लडके व लडकी उसके उत्पन्न हुए और अपने पतिके संगमें जो आनन्द और संग करके दुःख और संसारके अनेक ताप और बालकोंके खिलाने देखने में जो आनन्द और मल मूत्र धोनेमें जो दुःख सबकूं वे ऋषि स्त्री होकर अनुभव करते भये एकदिन वो स्त्री उसी जगह जहां ऋषिने डुबकी मारी थी जल भरनेके लिये गई घट कूं गंगाजीके तीरे रखकर गंगाजीमें स्नान करने लगी जब नीचे कूं डुबकी मारी तब तो वो स्त्री थी जब ऊपरको मुख उघाडा तब अपने शरीरकूं देखे तो ऋषिका शरीर होगया और गंगा-जीके तीर घटभी रक्खा दीखता है आसन पूजाभी रक्खी

हुई दीखती है यो भी स्मरण होताहै मैं अमुक ऋषि हूं नित्य यहां स्नान करनेके लिये आता हूं और योभी स्मरण होताहै मैं अमुक पुरुषकी स्त्रीहूं यहां जल भरने-के लिये आई थी पहले घरकाभी व्यवहार स्मरण होताहै पिछले घरका भी व्यवहार स्मरण होताहै दोनों घरोंमें प्रीतिहै स्पष्ट यो निश्चय नहीं होसक्ता है कि मैं ऋषि वा स्त्री हूं उसकालमें उस स्त्री का पति अपने लडके कूं गोद लिये हुए उसी जगह आया ऋषिने देखा कि निश्चय योही मेरा पतिहै फिर भलेप्रकार निश्चय होगया कि मैं गंगाजी में स्नान करनेसे ऋषि होगया उस पुरुष ने ऋषिसे बूझा महाराज मेरी स्त्री यहां जल भरने आईथी घट उसका यो रक्खाहै वो कहां गई आपने भी उसकूं देखी है जो उसका वाक्य सुनकर और बालक लडकेकूं देख-कर मोह होगया ऋषि रोने लगा उस पुरुष ने प्रार्थना करके बूझा महाराज वो स्त्री गंगाजीमें डूबगई वा किसी सिंहादिने खालिया और तुम क्यों रोतेहो ऋषि कहते हैं वो स्त्री तो मैं हूं गंगाजीमें स्नान करने से ऋषि होगया इस बातकी सिद्धिके लिये समस्त व्यवस्था पिछले घरकी और लडके लडकियोंके नामादि कहदिये उस पुरुष कूं निश्चय होगया कि बेसंदेह यो मेरी स्त्री है ऋषि उस पुरुष से कहते हैं इस लडके कूं भले प्रकार पालना यों करना वो करना उसने कहा कि तुम घरको चलो जो हुआ सो

हुआ बालकों कूं खिलाते रहना और घरके काम करते रहना ऋषिजी उसके साथ हुए उसी समय वो परमेश्वरकी माया दूर होगई यो व्यवस्था कोई एक पलमें बीती जितनी देर जलमें डुबकी मारी जब ऋषिजीने ऊपरकूं शिर उभारा देखतेहैं वोही महीना वोही मुहूर्त्त न वो पुरुष न वो घट है ऋषिजी कूं निश्चय हुआ यो परमेश्वर की माया देखी स्कन्दपुराणमें केदारखण्डमें यो कथा भलेप्रकार लिखी हुई है और वासिष्ठादि ग्रन्थों में ऐसी बहुत कथा हैं और बहुत प्राणियों कूं यो बात प्रत्यक्ष है कि स्वप्न तो घड़ी वा दो घड़ी रहा और राज्यादि १०० वर्ष किये भले प्रकार विचारो मायामें क्या नहीं बनसक्ता और यो जाग्रत् निश्चय स्वप्न की बराबर है क्योंकि जाग्रत् के पदार्थ दुःख सुखके हेतुहैं और अनित्य हैं ऐसेही स्वप्न के पदार्थ हैं और जैसे जाग्रत् में स्वप्न का निश्चय किया करतेहैं ऐसे स्वप्नमें भी स्वप्नका निश्चय किया करतेहैं तात्पर्य्य यो जाग्रतमें जो प्रपंच दीखताहै समस्त स्वप्नकी बराबर है मायाहै इससे सिवाय और क्या माया होगी कि गर्भमें ठहरकर वीर्य्य चेष्टा करने लगताहै और बहनेवाला जो पदार्थ वीर्य्य है उसका कार्य कैसा कठिन होजाताहै फिर उसी वीर्य में देखो कैसे हाथ पैरादि बनजाते हैं फिर वोही ब्राह्मण साधु चोर जार कहाजाता है किसी काल में तो वो लाड करने के योग्य किसी काल में भोग करने के योग्य

किसी कालमें पूजन करने के योग्य होताहै किसी काल- में उसकूं देखकर प्राणी ग्लानि मानतेहैं किसीकालमें उ- सके पुत्रादि चाहते हैं कि यो मरजावे तो सुन्दरहै किसी कालमें उन शरीरके स्पर्श करनेसे पातक लगताहै मकान वस्त्रादि अपवित्र होजातेहैं विचारो एक पदार्थमें कितनीकितनी अवस्था बीतती हैं जो एकरस पदार्थ नहीं; सबकूं एकप्रका- रका न दीखै सोई मायाहै चित्ततो बहुत चाहताहै कि ऐसी२ कथा लिखकर इस बातकूं करामलकवत् सिद्ध करदूं परन्तु ग्रंथका विस्तार होताहै बुद्धिमान् एक दृष्टान्तमें विचारलें अब विचारों कि वेदांत शास्त्रका मत कैसा सुन्द- रहै परमेश्वर कूं तो परिपूर्ण नित्यमुक्त नित्यानंदादिरूप सिद्ध करना भक्ति ऐसी करनी अपना आप समस्त पर- मेश्वरमें झोंक देना अपने अंशके न रखने से परमेश्वरकी पूर्णता सिद्ध होतीहै और सबके मतकूं अंगीकार करना सच्चा बताना यद्यपि स्वप्नके पदार्थ झूठे हैं परन्तु उस स- मयमें तो सच्चेहैं और सब मतवाले अपनेही मतकूं हठकर- के सिद्ध करतेहैं औरों की असूया करतेहैं पूर्वमीमांसावाले परमेश्वरकूं नहीं मानते जो भेद उपासनावाले परमेश्वरकूं मानतेभी हैं तो परिच्छिन्न मानते हैं जब जीव ब्रह्मका भेद कहा स्पष्ट प्रतीत होताहै परमेश्वर परिच्छिन्नहै और जो वे ऐसा कहैं कि परमेश्वर की मायामें क्या नहीं बन सक्ता तो परमेश्वर उनकूं आनन्द रक्खे क्यों कि यो ही हमारा

सिद्धान्तहै जब भेदवादियोंका अपने मतमें ठिकाना नहीं पाता तब मायाकूं अंगीकार करतेहैं मायाकूं अंगीकार किया और वेदांत शास्त्र में प्रवेश हुआ क्योंकि वेदांतके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं वेदान्तकूं त्याग करके वृथा और अनात्म शास्त्रोंमें माथा मारतेहैं १८ विद्याहैं मुक्तिके लिये मुख्य वेदान्त शास्त्र है १४ विद्या तो येहैं ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण ये चार वेद और ६ इनके अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त, मीमांसाशास्त्र, तर्कशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र ये १४ विद्या हैं वेदान्तशास्त्रका मीमांसामें अन्तर्भाव है वैशेषिक शास्त्रका तर्कशास्त्रमें और सांख्य पातंजल पाशुपत वैष्णव रामायण भारतादिका धर्मशास्त्रमें अन्तर्भावहै पुराण १८ हैं ब्राह्म पद्म स्कन्द मार्कण्डेय शैव वैष्णव गणेश और भागवत भविष्यत् ब्रह्मवैवर्त लिंग वामन वाराह कूर्म मत्स्य गरुड ब्रह्माण्ड और उपपुराण वाशिष्ठ लिंग नारसिंह नन्दीय नारदीय वामनीय हंस तत्त्वसार दौर्वास्य शिवधर्म कापिल वामन वारुण रेणुक वायवीय कालीय महेश्वर पाराशर मारीच भार्गवादि भेदसे बहुत हैं मनु याज्ञवल्क्य विविष्णु यम आंगिरस वशिष्ठ दक्ष संवर्त शातातप पाराशर गौतम शंखलिखित हारित आपस्तंबी संस कात्यायन वात्स्यायन बृहस्पति देवल नारद पैठीनसी इनके और औरोंके भी कियेहुए

बहुत धर्मशास्त्र हैं कोई १८ विद्या कहते हैं आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्ववेद अर्थशास्त्र ये चार मिलकर १८ होजाती हैं कामशास्त्र का आयुर्वेद में अन्तर्भाव है नीतिशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, सूपकारशास्त्र, और ६४ कलाओंका अर्थशास्त्रमें अन्तर्भाव है इस प्रकार १८ विद्या हैं वेदांत शास्त्र का यो सिद्धांत है कि यो संसार स्वप्नवत्है निष्प्रपंच ब्रह्ममें भ्रान्ति करके नाना प्रकारकी कल्पना कर रक्खी हैं जैसे कोई बागड़भूमिमें दूरसे रेतीकूं देखकर कहैं कि यह नदी है कोई कहता है इसमें थोड़ा जल है कोई कमर जल कोई अगम्य जल कहता है तात्पर्य सबकी कल्पना झूठी हैं जो जगत् सच्चा होता तो बड़े बड़े बुद्धिमान मीमांसा सांख्य पातंजलि न्याय शास्त्रादिवालोंका सबका एक मत होता सबका मत पृथक २ होनेसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि निष्प्रपंच ब्रह्ममें भ्रान्तिसे जगत् कल्पितहै इस बातकी सिद्धि में बहुत श्रुति स्मृति आदि प्रमाण हैं और अनुभवमें भी आवेहै जैसी जैसी किसी की बुद्धि है वैसा ही वैसा जगतकूं कहते हैं और ईश्वर कूं भी यथामति अंतर्यामी से लगाकर कुलदेवता माता शीतला पीपल वृक्षादि जड़ पदार्थ तक कहते हैं सो कुछ थोड़ा थोड़ा मत उनका भी प्रसंगसे सुनो पूर्वमीमांसाशास्त्रवाले तो कहते हैं कि कर्म करने से मुक्तिहै स्वर्गादि प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं

कर्म फलदाता है और कोई ईश्वर नहीं स्वर्गादि नित्य है उनकी उत्पत्ति प्रलय नहीं कोई एकदेशी उनके ईश्वर कूं भी मानते हैं। सांख्यशास्त्रवाले यह कहतेहैं-कि जैसे दूधका दधि परिणाम होजाताहै ऐसे प्रकृति जगत्रूप करके परिणाम होगई है और पुरुष जलगत पद्मपत्र वत् असंगहै तात्पर्य परिणामवाद सांख्यशास्त्रवालोंकाहै या आरंभ वाद शास्त्रवालोंका है न्यायशास्त्रवाले यों कहते हैं कि यो जगत् प्रलयके समय ईश्वरकी इच्छा-से परिणामरूप होजाता है अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु-के परिमाणु होजाते हैं और सृष्टिके समय ईश्वरकी इच्छासे परिमाणु मिलकर द्व्याणुक त्र्यणुक होकर फिर ऐसेही पृथ्वी आदि होजाते हैं और कहते हैं इस जगत् में सब सात पदार्थ हैं पृथ्वी जल तेज वायु आकाश का-ल दिक् आत्मा मन इन ९ पदार्थों कूं तो एकद्रव्य बो-लतेहैं और रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक् संयोग विभाग परत्व अपरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार इन २४ पदार्थों कूं एक गुण बोलते हैं ये गुण द्रव्योंमें रहते हैं इसी प्रकार कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव ये पांच पदार्थ हैं और यावत् जगत् में पदा-र्थ हैं उनका इन्हीं सात पदार्थों में अन्तर्भाव है। जीव ईश्वर का भेद कहतेहैं जीव ईश्वर दोनों व्यापक

हैं पृथिवी आदि चार द्रव्य कूं परमाणु रूप करके नित्य कहते हैं आकाशादि पांच द्रव्य कूं सदा नित्य कहते हैं । व्याकरणवाले कहते हैं—शब्द ब्रह्म है सो नित्य है तात्पर्य वैयाकरण स्फोटवादी हैं । पुराणवालोंका मत प्रसिद्ध है कोई विष्णु कोई शिव शक्ति गणेश सूर्यकूं ईश्वर कहते हैं अपने २ मतके पृथक् पृथक् शास्त्र सात्वततंत्र नारदपंचरात्र कुलार्णवादि बनारक्खे हैं । तात्पर्य पुराणवालोंका मत जैसा कि गरुड़वाले कहते हैं यो बहुत प्रसिद्धहै कहांतक लिखें बहुत मत हैं । सांख्य न्याय शास्त्रादिवालोंका मत उसी जगह निश्चय होसक्ता है यहां तो एक नाममात्र उनका मत दिखादिया है और नास्तिक बौद्ध चार्वाकआदि के १८ मत तो मुख्यहैं और भी बहुत भेद हैं वे ईश्वर वेदकूं नहीं मानते कोई शून्यवादी कोई कालवादी कोई स्वभाववादी कोई विज्ञानवादी हैं कोई कपालीमतके हैं नाना मत नास्तिकों के हैं और कठिनहैं पुराणवालोंके मतसे उनका बहुत बारीक मत है ऐसे ऐसे मत न्याय वेदान्तके पूर्वपक्षोंमें बहुत लिख रक्खेहैं क्योंकि वेदान्त नैयायिक उनके मतकूं खण्डन करसक्ते हैं । पुराणवालों से उनका मत खण्डन नहीं हो सक्ता उनकी युक्ति बहुत बारीक हैं और जो पाखण्ड अब कलियुगमें प्रसिद्ध है उनका लिखना योग्य नहीं ।

तात्पर्य चार वर्ण चार आश्रम और अनुलोमज प्रतिलोमजा-
दि जाति शास्त्र विहित हैं उनसे पृथक् जिसका वेद स्मृति-
योंमें पता न लगे सब पाखण्ड मनुष्यों के रचेहुए हैं बु-
द्धिमान् को विचार लेना चाहिये अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ
विराट कूं वैदिकउपासनावाले ईश्वर कहते हैं। शिव वि-
ष्णु शक्ति सूर्य गणेशादि कूं पुराणवाले ईश्वर कहते हैं।
भूम या भोपाल भूत पिशाच योगिनी श्रापा पीपल कुदा-
लादि अनेक हैं उनकूं प्राकृत जीव ईश्वर कहते हैं। इसके
पूजनेसे सृष्टिहोतीहै इस हेतुसे वे ईश्वर कहते हैं वेदोंमें औ-
र लोकमें अन्तर्य्यामी सूत्रात्मादि भेद करके विष्णु शिवा-
दि भेद करके राम कृष्णादि भेद करके राधावल्लभ गो-
पालादि भेद करके हनूमान भैरवादि भेदकरके पाषाण
मृत्तिकादि भेद करके हजारों भेद ईश्वरके प्रतीत होते हैं
अब बुद्धिमान् विचारैं कौन सा ईश्वर सच्चाहै कौनसा मत
सच्चाहै हम सत्य कहते हैं योंहीं विचारो कि यह सब माया
है विवर्तवाद आभासवाद अजातवाद वेदांतशास्त्रवा-
लों का है सोई सत्यहै और तत्त्वं पदोंका जो एक लक्ष्या-
र्थ सच्चिदानन्द रूप है सोई परमेश्वर है इसीकूं ज्ञान कह-
ते हैं योही ज्ञान मुक्तिका हेतु है॥

इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यामष्टमोऽध्यायः॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

मू० । देहादिके साथ तादात्म्य करके देहादि में जो अहंबुद्धि इसी कूं अज्ञान कहते हैं यो विचारो कि आत्मा तो शुद्ध १ परिपूर्ण २ सत्य ३ चैतन्य ४ आनन्द ५ अखण्ड ६ अज ७ अमर ८ एकरस ९ और भी बहुत विशेषणहैं और अशुद्ध देह १ परिच्छिन्न २ असत्य ३ जड़ ४ दुःखरूप ५ एकदेशी ६ जन्मवाला ७ नाशवाला ८ नित्यएकरस नहीं रहता ९ आत्माकी और देह की जो एकता देखते हैं इससे परे और क्या अज्ञान होगा इस अज्ञानका कारण आसुरी सम्पत् है सोई दिखलाते हैं । दम्भ दर्प अहंकार अपवित्र अभिमान् ईश्वरकूं न मानना क्रोध कठोरता मूर्खता धर्मकी प्रवृत्ति कूं न जानना अधर्मकी निवृत्तिकूं न जानना असत्य बोलना जगत् कूं अनीश्वर कहना बड़ी बड़ी कामना मनमें रखनी जो कभी पूर्ण न हो खोटे खोटे आग्रह करके सज्जनों से वैर करना गुणवानोंमें दोष निकालना बुद्धि तमोगुणी होनी अर्थात् हमने कथा कही थी उससे हमारी क्षति हुई शास्त्रवालोंकूं पाखण्डी कहना चिन्ता ऐसी एसी करनी जिनका प्रलयपर्यंत ठिकाना न लगे निश्चय यो रखना जो हम खा पहर जावेंगे स्त्रियोंके साथ आनन्द भोग जावेंगे यही मुख्य है देना नट बन्दरवालोंकूं कभी किसी साधु ब्राह्मणकूं

जो देता तो दम्भ अहंकार करके और उनका ति-
रस्कार करके हजारों आशारूपी फांसियोंमें बँधे रहना
अन्याय करके रुपयादि संचय करना यो मुझकूं प्राप्त है
जो प्राप्त करूंगा मेरी बराबर और कौन है धन हमारे ब-
हुत कुटुम्ब हमारे बहुत ऐसे २ अवगुण आसुरी सम्पत्
वालोंके कहे श्रीभगवान्ने फिर कहा—ऐसे पुरुषोंकी
मुक्ति तो दूर है मुक्तिका मार्ग भी उनकूं नहीं मिलेगा ये
पुरुष जगत्के भ्रष्ट करनेवाले हैं ऐसोंकूं हम पशुकी यो-
नियोंमें फेकेंगे वारम्वार सर्प विच्छू कीट सूकर कूकरादि
योनियोंमें जन्म लेते रहेंगे फिर कहा काम क्रोध लोभ
ये तीन नरकके द्वारे हैं आत्माकूं मूढ योनियोंमें प्राप्त क-
रनेवाले हैं उनकूं तो अवश्यही त्याग करना चाहिये प्रथम
उनकूं त्याग करके जो पीछे मुक्ति में प्रयत्न करेगा तब
सिद्ध होगा अर्जुनने श्रीकृष्ण महाराजसे प्रश्न किया ।
महाराज किस करके प्रेराहुआ यो पुरुष पापकूं करता
है इच्छा नहीं भी करता परन्तु ऐसा प्रतीत होताहै जैसा
कोई बल करके पापमें जोड दे श्रीभगवान् ने कहा हे अ-
र्जुन ! जो तुमने बूझा पाप करनेमें क्या हेतु है सो सुनो
काम हेतुहै कामना होनेसे क्रोध होताहै रजोगुणसे इसकी
उत्पत्ति है रजोगुणके जय करनेसे इसका भी जय हो-
जाताहै अनन्त है भोजन जिसका बडा पापी मोक्षमार्ग-
का वैरी काम कूं जानो जैसे धूपने अग्नि कूं मलने दर्प-

णकूं जेरने गर्भकूं ढक रक्खा है ऐसे कामने विवेककूं ढक रक्खा है प्राकृतियों कूं तो यो काम भोगसमय मित्र-सा प्रतीत होताहै ज्ञानी कूं तो भोगसमय भी दोषदृष्टि होने से वैरी दीखता है कितनाही भोग भोगो कभी तृप्ति न हो और दूनी अग्नि लगै इसकी जय का उपाय यों है यो काम इन्द्रिय मन बुद्धिमें रहताहै क्योंकि विषय कूं देखा सुना संकल्प विकल्प किया निश्चय किया फिर कामका आविर्भाव होजाता है सो काम विवेककूं आवरण करके आत्माकूं मोहता है इसलिये यावत् इन्द्रिय का विषयके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ प्रथम मोहसे विषयमें दोषदृष्टि करके इन्द्रियोंकूं रोकना फिर इन्द्रिय नहीं रुकसकी देह इन्द्रिय मन बुद्धिसे पे जो आत्मा उसकूं आश्रय करके इस पापी कामकूं मारो जैसा यो परमेश्वर ने अर्जुन कूं उपदेश किया ऐसाही किसी गुरुने शिष्यकूं उपदेश किया कि हे शिष्य ! ये काम क्रोधादि प्रथम तो ज्ञानकी सिद्धिके लिये त्यागने योग्यहैं और ज्ञानहुए पीछे जीवन्मुक्ति के लिये त्यागने योग्य हैं।शिष्य कहता है-महाराज जीवन्मुक्ति मुझकू मतहो देहपातके पीछे तो मैं विदेहमुक्त होजाऊंगा गुरु कहते हैं जो तुमने यहांके तुच्छ पदार्थोंके भोगने के लिये जीवन्मुक्तिं का अंगीकार नहीं किया तो निश्चय होताहै स्वर्गादि पदार्थोंके भोगनेके लिये विदेहमुक्तिका भी अंगीकार नहीं करोगे

हेतुसे प्रतीत होताहै तुम स्वर्गमात्र से आपकूं कृतार्थ जानोगे फिर निश्चय आपका जन्म होवेगा जो कभी तुमने अपने मनमें यो मानाहो कि स्वर्ग क्षय अतिशय साहस्य पतन इन तीन दोषों करके त्यागना योग्य हैं॥

टी०—दिन दिन प्रति अपना किया हुआ पुण्य कम होता रहताहै इसकूं तो क्षय दोष कहतेहैं और जैसे इस लोकमें चक्रवर्त्ती राजासे लगाकर कंगाल पर्यन्त तारतम्यताहै ऐसे स्वर्गमें विमान ऐश्वर्यादिकी तारतम्यता है अपनेसे अधिक विमान वालेकूं देखकर मनमें अतिशय रहत यो दूसरा दोष है और जब समस्त पुण्य नाश होताहै तब उसके गलेकी माला सूख जाती है वो तो अपने आप वहांसे नीचे गिरना नहीं चाहता परन्तु वहीं स्त्री जिनके साथ विहार करता था टांग पकड कर उलटा दिया करती हैं तीसरा यो साहस पतन दोषहै॥

सू०—विचारो कि इन तुच्छ पदार्थोंमें जो अनेक दोष करके युक्त हैं श्रीभगवान् भी कहतेहैं ये शब्द स्त्री आदि भोग निश्चय दुःख के कारण हैं उनके नाश अप्राप्तिमें जो दुःखहैं सो तो प्रसिद्धहैं परन्तु प्राप्ति कालमें भी स्पर्द्धा निन्दा भयादि दोषों करके युक्त दुःख रूप हैं फिर उनमें दोषदृष्टि करके क्यों नहीं त्यागते जब ये तुच्छ पदार्थ न त्यागे गये स्वर्गादि के पदार्थोंकूं कैसे त्यागोगे और यो तुम्हारा इच्छापूर्वक आचरण अनिष्ट है। इस बातमें श्री सुरेश्वराचार्यजीके वाक्य कूं प्रमाण देते हैं—जानाहै ब्रह्म-

तत्त्व जिसने उसका जो इच्छापूर्वक आचरण हुआ तो कूकर पशु आदि और ज्ञानियों में क्या भेद हुआ । जब धर्म कर्म शास्त्रकी आज्ञाकूं न मानकर इच्छापूर्वक आचरण किया फिर अशुचि भोजन में किसप्रकार दोष प्रतीत होगा । शिष्य कहताहै–महाराज मुझकूं इतनेही मात्रसे अनिष्ट सूचन किया गुरु उपहासपूर्वक कहतेहैं–ज्ञानसे प्रथम तो तुमकूं मनमात्रके दोषों करके क्लेश था अब समस्त लोगों की निन्दा सहनी अंगीकार करते हो आपके बोधकी क्या स्तुति होसके आपके बोधका जो वैभव है सो आश्चर्य है ऐसा बोध तो हमकूं भी नहीं हुआ यो बात लोकमें प्रसिद्धहै जो काले कम्बल पर और भी छींट-स्याही की पड़ जावे तो कुछनहीं प्रतीत होती परन्तु श्वेत चादरपर जो एक छींट भी और रंग की पड़जावे वो भी दूरसे चमकतीहै ऐसे ज्ञानीका जो किञ्चित् भी अन्यथा आचरण प्रतीत हो तोभी मूर्ख उस बातकूं बढ़ाकर कुछ कुछ बकने लगतेहैं यो तो उनकूं विचारही नहीं कि जो विधिनिषेध व्यवहारहै यो गुणों का कार्यहै द्रष्टा उनका असंग है और जो स्वसंवेद लक्षण ज्ञानीके हैं उनकूं मूर्ख क्या जानेंगे केवल जड़भरतादिके दृष्टान्त देदेकर निन्दा करेंगे और जो उनकूं कहा बोधहै कि ये तीनों गुण सदा विदेह मुक्तसे प्रथम सबमें देवतासे लगाकर पशुपर्य्यन्त रहतेहैं किसीके थोड़े किसीके बहुत और यो सब देखना

सोना खाना पीना आदि अन्तःकरण का धर्महै अन्तः-करण माया का कार्य होनेसे मिथ्या है कोई कोई तो ऐसा जानतेहैं कि अन्तरंग साधन मुख्यहै बहुत तो बहिरंग साधनोंकूं प्रमाण देदेकर निन्दा स्तुति करते हैं।शिष्य कहता है—महाराज फिर क्या करना चाहिये। गुरू कहते हैं—करना क्या चाहिये यो करना चाहिये जो सूकर कूकर-की बराबरी है इसकूं वमनवत् त्यागदो तुम तो विचार-वान् हो जितने अन्तःकरण गत दोपहैं सबका संग त्याग करके देवताकी बराबरी अंगीकार करो तुम इन मनुष्यों करके देवताके सम पूजनेके योग्यहो काम क्रोधादिमें जो जो दोष दुःखहैं सब मोक्षशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं वहांसे तलाश करके दोषदृष्टि कर कर कामनादि का त्याग करके जीवन्मुक्ति सम्पादन करो शिष्य कहताहै महाराज मैंने अंगीकार किया कामादिका तो त्याग करूंगा परन्तु मनोराज्य करनेमें तो मेरी क्षति नहीं गुरु कहते हैं मनो-राज्य कूं समस्त दोषोंका बीज होनेसे श्रीभगवान् ने क्षति कहीहै उस अर्थकूं घटाते हैं बैठे बैठे मनोराज्य हुआ अमुक पदार्थमें अर्थात् स्त्रियादिमें यो गुणहै उस गुणको ध्यान करते करते उस पदार्थमें सूक्ष्म संयोग होगया संग होने-के पीछे फिर अधिक कामना होगई कामनारूपी जो अग्नि उसकी शान्तिके लिये किसीके पासगये कहा हमकूं यो वस्तु चाहती है उन्होंने न दी तब क्रोध उत्पन्न हुआ अन्न

अपने दोषकूं ता विचारते नहीं कि यो मेरे मनोराज्यने अनर्थ किया है उसमें दोष निकालतेहैं कहते हैं देखो कैसे पापी अधर्मात्मा जीव हैं साधु ब्राह्मणकी आज्ञा नहीं करते क्या धन छातीपर धरके लेजावेंगे और अनेक कहने न कहनेके योग्य शब्दों कूं कहते हैं और जो मनमें ताप होता है उसके तो आप साक्षीहैं फिर क्रोधसे सम्मोह अर्थात् कार्य अकार्यके विवेकका अभाव होगया फिर जो शास्त्र गुरुसे सुना सब भूल गये फिर चेतनारूपी बुद्धि का नाश होगया अर्थात् फिरभी होशियार होजावें तो बुद्धि न रही फिर अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट होगये विचारो मनोराज्यने कैसा अनर्थ किया जो मनोराज्य होकर मनमें कामना आई थी तो उसमें प्रवृत्त न होना था जो प्रवृत्त भी हुए थे तो उनके न देनेमें जो अपमान हुआ था उसकूं सहजाना था उनकूं कुछ यद्वा तद्वा न कहना था जो उस समय इन्कार भी करदिया था अथवा दुर्वाक्य भी कहदिया था तो फिर सत्त्वगुणी वृत्तिमें काम आते जो कुछ वे दाता भी थे आगेकूं जो उनसे काम निकलता सो सब नष्ट होगया उनकूं तो क्रोधमें आकर यद्वा तद्वा कहबैठे फिर यो मुख न रहा कभी उनके समीपही जा बैठें और जो कभी उनके सत्त्वगुणी वृत्तिका विशेष उदयहो और बहुत दानकरें तो आपकूं कुछ नहीं मिलसक्ता सारी अवस्थाकूं तो उनसे मुख्न्त तोड बैठे और जिन्होंने सुना उन्होंने भी अपने आपसे

मन फेर लिया बारम्बार विचारो मनोराज्य बडा अनर्थ करताहै इसलिये मनोराज्यकाभी जय करो मनोराज्य कामनाका जय करनेसे ज्ञानद्वारा मुक्त होजाता है ॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

प्रथम थोडेसे साधन जीवन्मुक्तिके लिये लिखभी आयेहैं अब और भी सुनो जिनकें अनुष्ठान करने से कामादि का जय होजाता है साधक कूं तो अभ्यास करनेसे सिद्ध होते हैं सिद्धमें स्वभाव से रहते हैं जीवन्मुक्तिके ५ प्रयोजन हैं प्रथम उनकूं लिखते हैं—ज्ञानरक्षा १ तप २ विस्मयादिका अभाव ३ दुःखों की निवृत्ति ४ सुखका आविर्भाव ५ अर्थ इनका यो है जीवन्मुक्तिके अभ्यास करनेसे संशय विपर्य्ययका उदय नहीं होता शुक राघव अस्मदादिवत् अकृत उपासक कूं कदाचित् संशयादिके उदय होनेके भयसे अवश्य जीवन्मुक्तिका अभ्यास करना योग्यहै । श्रीभगवान् कहते हैं—जिसके संशय हैं वो नाश होता है संशयादि का उदय न होना ज्ञानरक्षा १ चित्त की एकाग्रता तपहै सब धर्मों से श्रेष्ठहै ज्ञानीका तप लोकसंग्रहके अर्थ है । श्रीभागवान् कहते हैं—श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है सोई सो और भी आचरण करते हैं संग्रह भले तीन प्रकार के हैं—शिष्य १ भक्त

२ तटस्थ ३ शिष्य तो गुरुके शास्त्रविहित आचरण-कूं देख देख अधिक अधिक श्रद्धा होकर फिर उनके वाक्य में विश्वास करके मुक्त होता है १ और भक्त उनकी पूजादि करके वांछित फलकूं प्राप्त होताहै ❋ विभूति की कामनावाला ज्ञानीका पूजन करे जिस जिस लोक-की मनसे भावना करेगा और जो जो कामना चाहेगा उसी उस लोक और उसी उस कामनाकूं प्राप्त होगा यो श्रुतिका अर्थ है. स्मृति का भी अर्थ सुनो जो एक ब्रह्मका जाननेवाला भोजन करे तो समस्त जगत् तृप्त होता है इसलिये जो कुछ देवे योग्य है सो ब्रह्मवित्कूं देना चाहिये तटस्थ दो प्रकार का है सन्मार्गी १ असन्मार्गी २ सन्मार्गी तो ज्ञानीके आचरणकूं देख देख अपने आप सदाचार करके मुक्त होगा, असन्मार्गी जीवन्मुक्तिकी दृष्टि करके सारे पापोंसे मुक्त होगा यहां स्मृति प्रमाणहै जिसकी अनुभवपर्यंत बुद्धितत्त्वके विषय प्रवर्तेहैं उसकी दृष्टिगोचर जो होगा अर्थात् कृपादृष्टिस जिसकूं वे देखेंगे वो सारे पापों से छूटजावेगा जो ज्ञानी कूं वाणी आदि करके दुःख देंगे मन करके द्वेष करेंगे वे ज्ञानीके पापकूं ग्रहण करेंगे यहां श्रुति प्रमाणहै सुहृद ज्ञानी के पुण्य द्वेषी ज्ञानी के पापकूं ग्रहण करेंगे यो श्रुतिका अर्थ है २ जिस समय ज्ञानी की बहिर्मुख वृत्तिहो उस समय उसकूं कोई

दुर्वाक्य बोले उसकूं सुनकर अथवा वृथा कोई मार भी दे चित्तकी वृत्तिमें रागद्वेष उदय न होना इसका नाम विसम्वाद का अभाव है ३ संसारके व्यवहार में धनके सञ्चयादि में अनेक प्रकारके दुःख और मुक्तके लिये श्रवणादि में अनेक दुःख हैं जीवन्मुक्तके सब दुःख नाश होजाते हैं यदि आत्माकूं जानता है कि मैं यो हूं फिर किसकी इच्छा करता हुआ और किस कामनाके लिये शरीरकूं दुःख दे यों श्रुतिका अर्थ है ४ समाधि करके दूर करदियेहैं चित्तके मल जिन्होंने और आत्मामें प्रवेश किया है चित्त जिन्होंने उनकूं जो सुख होताहै उसकूं वाणी नहीं कह सक्ती अपने अनुभव करके जाना जाताहै यो श्रुतिका अर्थ है जैसे कोई १६ वर्षकी स्त्रीसे १०-११ वर्षकी लडकी बूझे कि तू सुसरालमें गई थी तुझकूं पतिके संगमें क्या आनन्द हुआ जैसे वो उस आनन्दकूं अनुभव करती हुई उनकूं कमसमझ जान कर हँसकर चुप होजाती है ऐसे ज्ञानी ब्रह्मानन्दकूं अनुभव करते हुए औरोंको कम समझ जानकर मौन रहते हैं यो सुखाविर्भाव पांचवां प्रयोजन जीवन्मुक्ति का कहा ५। जीवन्मुक्तिके लिये जो अष्टांग योग कहते हैं उसकूं भी थोड़ा सा सुनो-योगके ८ अंगहैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, अर्थ-इनका पातंजलशास्त्र में भले प्रकार निश्चय होसक्ता है यहां इसलिये नहीं लिखा कि इस योग

करनेकी सम्प्रदाय लोप होरही है विना गुरु वो योग सिद्ध नहीं होसक्ता जिसकूं यो योग करनाहो और कोई गुरु मिले तो वहांसे उनका अर्थ निश्चय करे परन्तु और प्रकार भी उसका अर्थ करतेहैं परिपक्व है चित्त जिनका वे इनका ऐसा अर्थ निश्चय करें. देहादिमें विरक्ति यम १ स्वात्मतत्त्वमें अनुरक्ति नियम २ जैसे बैठे चलते लेटे सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मका चिन्तवन होता रहै वही आसन है सुख पद्मादि आसन मन्दके लिये हैं ३ प्राणके चलते हुए अपने आप सदा यो जप तप होता रहै सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम् इसका जो अर्थ उसमें चित्तकूं स्थिर करना अर्थात् योही निश्चय रखना कि मैं ब्रह्महूं ४ श्रोत्रादि इन्द्रियोंकूं शब्दादि विषयोंसे रोकना प्रत्याहार५बुद्धिकू विषयोंसे विमुख करना धारणा ६ जहां जहां दृष्टि जाव वहीं वहीं ब्रह्म देखना दृष्टि कूं ब्रह्ममयी करके सब जगत्कूं ब्रह्ममय देखना सो दृष्टि श्रेष्ठ है अथवा द्रष्टा दर्शन दृश्य इनका जहां विराम हो वहीं दृष्टि करनी नासाग्रदृष्टि बालकोंके लिये है ७ मैं असंग सच्चिदानन्द परिपूर्ण निरवयव एकरस हूं इस प्रकार चित्तका समाधान करना समाधि सो दो प्रकारकी हैं सविकल्प १ निर्विकल्प २ त्रिपुटी सहित सविकल्प १ त्रिपुटी रहित निर्विकल्प २ निर्विकल्प समाधि करनेके समय चार विघ्न होते हैं लय १ निद्रा आजानी विक्षेप २ बारम्बार विषयों का अनुसन्धान होना कषाय ३ चित्त

का रागादिसे तो हट आना परन्तु स्वरूपमें न पहुँचना बीचकी वृत्तिका नाम कषाय है इसीकूं स्तब्धीभाव कहते हैं रसास्वाद ४ समाधि के आरम्भसमय सविकल्पका आनन्द होना कि मैं ऐसा आनन्दरूप परिपूर्णहूं यो चिन्तवन होना इस कूं रसास्वाद कहते हैं प्राणायाम आसन विषयोंमें दोष दृष्टयादि करके लय विक्षेपादि का जय करना चाहिये वसिष्ठ जी कहते हैं चित्तनाश करने के दो मार्ग हैं ज्ञान १ योग २ ये दोनों मार्ग भगवान्‌नेभी गीताशास्त्रमें कहे हैं देहादि से परे आत्माकूं जानना अर्थात् असंग नित्य मुक्त अपने कूं निश्चय करना यो ज्ञान है और चित्तकी वृत्तिका निरोध करना इसका नाम योगहै चित्तवृत्तिनिरोध का प्रकार चार प्रकार से वशिष्ठ जीने कहाहै सदा वेदान्त शास्त्र कूं पढना सुनना विचारना १ जो ब्रह्मनिष्ठ साधु हैं उनका संग करना २ समस्त वासना का त्याग करना ३ अष्टांगयोग करना ४ प्रथम साधन उत्तम अधिकारीके लिये हैं जो वहां चित्तका निरोध न हो तो ये तीन उत्तरोत्तरहैं ❋ और जो चित्तके निरोधका प्रकार आत्मा संयम योग नाम करके श्रीभगवान्‌ने गीताशास्त्र में कहाहै उसकाभी अर्थ संक्षेप करके लिखते हैं—योगी मनकूं समाहित कर अकेला एकान्तमें बैठकर भले प्रकार जीतेहैं वश किये हैं मन इन्द्रियादि जिसने सो निराकांक्ष होकर शरीरयात्रा से सिवाय

भोजन वस्त्रादि सामग्री कूं त्याग करके पवित्रदेश में शुद्ध-
भूमि में अपना आसन बिछाकर वो आसन बहुत नीचा
ऊंचा न हो नीचे कुशाका आसन जापर उसके मृग च-
र्मादि फिर ऊपर वस्त्र बिछाकर मनकूं एकाग्र करके वश-
करीहै चित्त इन्द्रियों की क्रिया जिसने सो उसपर बैठकर
चित्तकी शांतिके लिये अभ्यास करै चित्तके एकाग्र क-
रने में देहकी धारणा भी उपयोगी है उसका धारण प्रकार
लिखते हैं-देहका जो मध्यभाग है उसकूं शिर और ग्रीवा-
कूं सम निश्चय करके नासाग्र दृष्टि होकर पूर्वादि कूं
नहीं देखता हुआ दूर होगया है भय जिसका सो ब्रह्म-
चारी व्रतमें स्थित होकर आत्मा में है चित्त जिसका
आत्माही है परम पुरुषार्थ जिसके इस प्रकार युक्त होकर
बठे । श्रीभगवान् कहते हैं-जो इस प्रकार सदा मनकूं समा-
हित करता हुआ निरोध हुआहै अन्तःकरण जिसका सो
पराशान्ति कूं प्राप्त होता है बहुत खानेवाले थोडे खाने-
वाले कूं भी बहुत सोनेवाले बहुत जागनेवालेकूं भी योग
सिद्ध नहीं होता तात्पर्य्य शास्त्रविहित सोना जागना बो-
लना चलना भोजनादि क्रिया जो नियम करके करेगा
उसकूं दुःखोंका नाश करनेवाला यो योग सिद्धहोता है ।
किस कालमें योग सिद्ध होता है इस अपेक्षा में कहतेहैं-
जिस कालमें वश किया हुआ चित्त आत्माही में निश्चय
ठहरता है सब कामना जो इसलोक की परलोक की हैं उनकी

इच्छा नहीं करता उस कालमें जानो कि योग सिद्ध हुआ जैसे दीवा बन्दमकान में एकरस प्रकाशता है हलता नहीं ऐसे जीताहै चित्त जिसने उसका चित्त प्रकाशता और निष्कंपता करके ठहरता है योग करके निरुद्ध हुआ चित्त जिस अवस्थामें संसारके विषयों से उपराम हो और जिस अवस्था में शुद्ध मन करके आत्माही को देखै आत्माही में तोष करै उस अवस्था में निरतिशयसुखकूं अनुभव करता है फिर उस अवस्था में स्थित हुआ तत्त्व- से नहीं चलता उस सुखकूं लाभ करके अपर जो ब्रह्म लो- कादि के सुख उनकूं अधिक नहीं जानता उस अवस्थामें स्थित हुआ बड़ेभारी दुःख करके भी नहीं विचलता दुः- खका प्रथम किंचित् संयोगमात्र करके समस्त दुःख और विषय सम्बन्धी दुःखोंका वियोग है जिस में उसीकूं योग जानना सो योग आचार्य शास्त्रको निश्चय करके अ- वश्य अभ्यास करना चाहिये दुःख बुद्धि करके प्रयत्न की जो शिथिलता उसकूं त्यागना चाहिये टिट्टीके पुरुषार्थ कूं स्मरण करना योग्य है जैसे कि वो यो संकल्प रखता है कि मैं कुशाके अग्रभाग में जितना जल ठहरता है कु- शासे इतनाही जल उठाकर समुद्रकूं सुखाऊंगा ऐसाही चि- त्तके निरोध करने का संकल्प रक्खे संकल्प से आविर्भा- व है जिनका ऐसे योग की प्रतिकूल जो कामना उनकूं स- बकूं त्याग करके और मन करके सब तरफ से इन्द्रिय ग्रा-

मकूं रोककर धैर्यकरके शनैः शनैः अभ्यासक्रमसे करके उपराम हो सहसा एकबारही जो पूर्वावस्था में खाना सोना बोलना बैठनादि था उनका सबका त्यागन करे आत्मामें भले प्रकार मनकूं स्थित करके कुछ चिंतवन न करे पूर्वाभ्यास रजोगुण के वश में मन जो फिर चले तो प्रत्याहार करके अर्थात् जिस जिस विषयमें मन जावे वही वहींसे रोक कर मन कूं वश करे अर्थात् आत्माके विषय स्थिर करे इस प्रकार अभ्यास करते करते रजोगुणका क्षय होने से योगसुख प्राप्त होजाताहै शान्त होगयाहै र-जोगुण जिसका इसी हेतुसे शान्त है मन जिसका प्राप्त हुआ है ब्रह्मतत्त्व जिसकूं उसकूं समाधिजन्य सुख अपने आप प्राप्त होताहै ऐसे सदा अभ्यास करते हुए योगी दूर होगये हैं पाप जिसके वो अनायास सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्वकूं प्राप्त होताहै फिर कृतार्थ होजाता है सो योगी सब भूतों में अपने आत्माकूं और सब भूतोंकूं अपने आत्माके विषय देखता है। सारे सम दृष्टिहै जिसके उसकूं श्रीभगवान् कहतेहैं कि जो मुझकूं सर्वत्र देखताहै उसकूं मैं सदा अपरोक्ष हूं वो मुझसे पृथक् नहीं जो मुझकूं इसप्रकार जानता है जैसे उसकी इच्छा हो कर्म त्यागकरके तो याज्ञवल्क्यवत् कर्म करता हुआ जन-कवत् निषेधकर्म करता हुआ दत्तात्रेयवत् वर तो निश्चय मुक्तहोगा वो सर्व प्रकार मेरे विषय वर्तता है मुझसे पृथक्

कुछ नहीं जानता जैसे आपकूं दुःख सुख होते हैं दूसरे के दुर्वाक्य बोलनेमें दुःख स्तुति करने में सुख ऐसेही अपनी उपमा करके सबकूं सम देखे किसी कूं दुःख न दे ऐसा पुरुष मुझकूं परम सम्मत है यो योगका लक्षण श्रीभगवान् ने अर्जुन कूं कहा अर्जुन इस योगकूं असम्भव मानते हुए बोलते भये हे परमेश्वर! समता करके अर्थात् मनकी दो गति लय विक्षेप उनकूं जयकरके केवल आत्माकार अवस्थान करके जो जो योग आपने कहा इस योग की दीर्घकाल जो स्थिति उसकूं नहीं देखता हूं किस हेतुसे मनकूं चंचल होनेसे हे कृष्णचन्द्र! मन चंचलहै स्वभावहीसे चपलहै प्रमथन शीलवाला इन्द्रियों कूं क्षोभ करनेवाला बलवालाहै विचारकरके भी जीतनेके योग्य नहीं प्रतीत होता विषय वासना करके अनादि का विषयों के साथ बंधा हुआ है इस हेतुसे दुर्भेद्है जैसे महाराज आकाशमें पवन चलताहै उसकूं घटादि में रोकना कठिनहै ऐसे मनका निग्रह कठिन जानताहूं वशिष्ठजी भी कहते हैं समुद्र का पान करजाना सुमेरुकूं उखाड़ लेना आदि जो बहुत कठिन प्रतीत होते हैं सो होजाते हैं परन्तु मनका निग्रह कठिनहै इस बातकूं अंगीकार करके मनके निग्रहका उपाय दिखाते हुए श्रीभगवान् बोलते भये हे अर्जुन जो तुमने कहा सो सत्य है मन ऐसाही है परन्तु मनकी दो गति हैं लय१ विक्षेप २ सो लयकूं तो अभ्यासकरके अर्थात्

आत्माकार प्रत्ययवृत्ति करके जय करना और विक्षेप कूं वैराग्यकरके अर्थात् विषयोंमें दोषदृष्टि करके जय करना इन दो उपायोंसे निश्चय मनका निग्रह होजाता है अन्तःकरण की वृत्तियोंका सूक्ष्म होजाना इसीका नाम मनोनिग्रह है जिन्होंने देहादि नहीं वश किये हैं उनकूं तो यो योग कठिनहै जिन्होंने अभ्यास वैराग्य करके मनकूं वश करलिया है उनकूं यो योग इसी उपायकरके सहजहै। अर्जुन बूझते हैं—महाराज!प्रथम तो कोई पुरुष इस योगमें श्रद्धा करके प्रवृत्त हुआ परन्तु पीछे उसने भले प्रकार प्रयत्न न किया शिथिलाऽभ्यास रहा योगसे चित्त चलकर विषयमें प्रवृत्त होगया तात्पर्य मन्दवैराग्य होगया अथवा अभ्यास करते करते देहका बीचमें पात होगया वो पुरुष योगका फल जो ज्ञान उसकूं नहीं प्राप्त होकर किस गतिकूं प्राप्त होताहै क्योंकि कर्मोंके फलकूं परमेश्वर में अर्पण करने से अथवा कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे स्वर्गादिकी प्राप्ति जो फल सो तो उसकूं होंगे नहीं ज्ञानके न होनेसे मुक्त न होगा दोनों तरफ सें भ्रष्ट हुआ।महाराज ! कहीं छिन्नाऽभ्रवत् यो गही में नाश होजाताहै हे परमेश्वर ! आप सर्वज्ञ हो इसका उत्तर देसक्ते हो श्रीभगवान् बोलते भये हे अर्जुन ! इस लोकमें तो उसका जो दोनों मार्गसे भ्रष्ट होना है और परलोकमें जो नरक की प्राप्ति ये दोनों उसके नहीं क्योंकि अच्छा कर्म करनेवाला कोई भी दुर्गति कूं नहीं

प्राप्त होता और जो तो श्रद्धा करके योग में प्रवृत्त होने-
से शुभकारी है फिर उसकी क्या गति होती है इस अपेक्षा-
में कहते हैं ब्रह्मलोकादि जो पुण्यकारी पुरुषों के भोग-
स्थान उनकूं प्राप्त होकर और बहुत दिन वहां के भले
प्रकार भोग भोगकर जो इसलोक में पवित्र धनवाले पुरुष
हैं उनके कुलमें वो योगभ्रष्ट जन्म लेताहै यह गति तो बड़े
अभ्यास करनेवाले की है और जिसके ज्ञान होनेमें कुछ थो-
ड़ीसी देररहीथी वह बुद्धिमान् ब्रह्मनिष्ठ योगियोंके कुलमें
जन्म लेता इस लोकमें मुक्तिका हेतु होनेसे ऐसा जन्म
होना बड़ा दुर्लभ है वो जो पूर्वदेहमें ब्रह्मविषय बुद्धि करके
योग करताथा फिर वो दोनों कुलोंमेंसे किसी कुलमें उसी
योग कूं प्राप्त होजाता है फिर अधिक मुक्तिके लिये प्रयत्न
करता है जो पराये वशभी हो तोभी पूर्वाभ्यास उसकूं
विषयोंसे हटाकर ब्रह्मनिष्ठकर देता है इस अर्थकूं कैमुति-
कन्याय करके दृढ़ करते हैं ज्ञानकी इच्छावाला जो
नर कुछ ज्ञान इसकूं प्राप्त नहीं हुवाथा और पापके
वशसे योगभ्रष्ट भी हुआ परन्तु फिर काल पाकर जिसकी
यो गति कि शब्दब्रह्मकूं उल्लंघ कर वर्तता है तात्पर्य वेदोंने
प्रतिपादन किये जो स्वर्गादि फल उनका तिरस्कार करके
उनसे अधिक फल जो ब्रह्मानन्द उसकूं अनुभव करता
हुआ अपने आपकूं कृतकृत्य जान्ता है और जिन्होंने
जन्म जन्ममें प्रयत्न करके दूर किये हैं पाप फिर पिछले-

जन्म में सिद्धि होकर वे उस गतिकूं अर्थात् ब्रह्मानन्दकूं प्राप्त होवें तो इसमें क्या कहना है ❋ अब और प्रकारके विषयों में दोषदृष्टि पूर्वक जीवन्मुक्ति के साधन सुनो संसारी लोक दो पदार्थोंकूं विशेष कहते हैं धन १ स्त्री २ प्रसिद्ध है कि चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, असूया, निन्दा, छलादि अनेक अनर्थ करके धन सिद्ध होता है और उसके कमा नेमें परदेशमें रहना नीचोंकी टहल करनी पराधीन रहना दि और रक्षा करनेमें चोर राजादि का भय और व्यय करने में उसके कम होनेका दुःख और नाशहोने में जो दुःख उसका लिखना क्या चाहिये सब जानते हैं तात्पर्य जिसके आदि मध्य अन्तमें क्लेशही क्लेश हैं ऐसे दुःखों के कारण धनकूं धिक्कार है और जो प्राकृत जीव धनसे स्त्री दिरा मांस द्यूत राग द्वेष अभिमान अहंकारादि ऐसे ऐसे यहां अनर्थ कर कर नरकका सामान करते हैं वो व्यव- स्था कहांतक लिखें तात्पर्य जितने पाप हैं सब धनसे होते हैं यो धन पापी विद्वान् विचारवान् से भी अनर्थ करादेता है इस बातकी सिद्धिमें श्रुति स्मृति इतिहास युक्ति आदि बहुत प्रमाण हैं इसके त्यागका अधिक माहा- त्म्य शास्त्रमें लिखा है संसारसमुद्रमें कान्ता कांचन दो आवर्त हैं तीनों भवन इनमें भ्रम रहे हैं जो इन दोनोंसे विरक्त है वो मनुष्यादि नहीं परमेश्वर हैं स्त्रीकी स्तुति

सुनो चांडालके घरकी बराबर स्त्री हैं चांडालके घरमें मल मूत्र मांसादि पड़े रहते हैं द्वारेमें चिह्नके लिये अस्थि लगे रहते हैं अस्थिके खंभ चर्म्मकी रज्जुसे बँधे रहते हैं मकानके ऊपर चर्म पड़े रहते हैं जो उसके मकान की यो व्यवस्था है तो विचारो कि उस मकान की जो मोरी जहां कूं उस मकान का मल जाता है उसकी क्या उपमा देनी चाहिये विचारो स्त्री में ये सब वस्तु हैं वा नहीं स्त्रीका शरीर मकान बस्तु भीतर उसके मलमूत्रादिका होना प्रसिद्ध है मुख द्वारवत् दांत अस्थिवत् पैर हस्तादि में अस्थि खम्भवत् नाड़ियोंसे बँधे हुए हैं शरीरके ऊपर चर्म है वा कुछ और है मोरीवत् उस शरीर में मल मूत्र त्याग करने के रस्ते हैं देखो उनकूं ऊपर से देख २ यो जीव विना विचारके कैसा आनन्दित होता है वृथा नरकवत् मोरी में डूबता है विचारो इससे सिवाय और क्या नरक होगा जो यो कहो कि हमकूं तो ये दोष नहीं फुरते बेशक हम भी जानते हैं कि ऐसे जीव जिनकूं विष्ठा मुरदे के मांस-में दोष नहीं फुरते उनके लिये अनेक प्रयत्न करते हैं प्राप्ति-के समय अपने कूं कृतकृत्य मानते हैं हमारी दृष्टिमें वेभी तो जीवहैं कुछ यो न समझना ऐसे सूकर कूकरही होते हैं मनुष्य भी बहुत ऐसे होते हैं अब विचारो मनुष्य-शरीर में और पशुमें क्या भेद हुआ हजारों जगह इन बातों-का प्रसंग है इस प्रसंग कूं बहुत क्या लिखें बुद्धिमान् जीवन्मु-

क्तिकी इच्छावाला इसी प्रकार सब पदार्थों में दोष दृष्टि कर-कर उनका संग न करे और वोही चांडाल के घरका दृष्टान्त अपने शरीर में घटावे अर्थात् चाण्डाल भी उस घरमें यो अध्यास नहीं करता मैं घरहूं यो अध्यास है कि मेरा घरहै ऐसे अध्यास करने से तो वो चाण्डाल है और जो देह कूं ऐसा कहते हैं कि हम देह हैं अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री आदि वर्ण ब्रह्मचारी आदि आश्रमी पण्डित धनवाले हैं विचारो यो देह चाण्डाल के घर की बराबर है वा नहीं जब देह कूं यो कहा मैं देहहुं फिर वो कौन हुआ तात्पर्य ऐसे विचार देहमें से अध्यासका त्याग करे भ्रमसे और पदार्थमें प्रतीत होना इसकूं अध्यास कहते हैं। बासना दो प्रकार की है–शुद्धा १ मलिना २ मुक्ति के लिये शास्त्र विहित अनुष्ठान करने की और श्रवणादि की वासना शुद्धा १ भोगों की वासना और संसारमें प्रसिद्ध होनेकी वासना मलिना २ शुद्धवासना मुक्ति की हेतुहै मलिन वासना जन्मकी हेतु है देहयात्राके लिये भिक्षादि का जो प्रयत्न करना यो ज्ञानी का बासना बंधका हेतु नहीं। श्रीभगवान् कहते हैं–जिसमें शरीरका निर्बाह होवे वो कर्म करता हुआ पापकूं नहीं प्राप्त होता ज्ञानीने शरीरयात्रासे सिवाय और बासना का त्याग करना तीन बासना बहुत दुःख करके त्यागी जाती हैं देह बासना १ लोकबासना २ शास्त्रबासना ३ शरीरकूं बहुत उबटने चंदनादि लगा-

लगाकर चिकना चांदना रखना और यो इच्छा रखनी कि यो शरीर सदा आरोग्य रहे यो देह वासना १ यों इच्छा रखनी कि, सब लोग मुझकुं भला कहैं यो लोक वासना २ शास्त्र बासना दो प्रकार की हैं एक तो बहुत पढ़ने सुनने की इच्छा अर्थात् जाने इस शास्त्र में क्या क्याहै दूसरी जो कर्म जपादि करना शास्त्र विहित करना यों इच्छा रखनी यो शास्त्र वासना ३ इन करके युक्त जो पुरुष उसकूं ज्ञानी भी भले प्रकार नहीं होता तात्पर्य तीनों वासना किसीकी पूर्ण हुई न होंगी युक्तिसे विचार देखो वा गुरु शास्त्र से निश्चय करलो और ये जो दो प्रकार हैं एक तो मनोनाश, नाश बासना क्षय १ और दूसरा सदा वेदान्त का श्रवणादि करना२इनका आविरोध सुनो जिसकूं संशय विपर्यय करके रहित भले प्रकार ज्ञान होगाया है उसकुं तो मनोनाश वासना क्षय मुख्य है श्रवणादिगौण हैं और जिसकूं भले प्रकार ज्ञान नहीं हुआ संशय विपर्यय है उसकुं श्रवणादि मुख्य हैं मनोनाश वासना क्षय गौण है मनोनाशवासना क्षय के साधन सुनो वाशिष्ठमें लिखा है जो जागता हुआ सुषुप्तिवत् रहे और जिसका जागना निर्वासन हो सो जीवन्मुक्तहै।श्रीभगवान् कहते हैं-- ज्ञानी सदा संतुष्टरहे मनादि कूं वश रक्खे मौनरहै मौनीके तात्पर्य कूं कोई नहीं पासक्ता बहुत लिखनेसे क्या प्रयोजन है मौनमें बहुत सुख और लाभ हैं और मैं असंग हूं यो दृढ़ विश्वास रक्खे आत्मा में अर्पित

करी है मन बुद्धि जिसने जिससे लोग उद्वेग न करें जो लोगोंसे उद्वेग न करे सोभक्त मुझकूं प्यारा है भक्त स्थितप्रज्ञ गुणातीत शब्द करके बहुत प्रकार श्रीभगवान् ने जीवन्मुक्त के लक्षण कहे हैं। निस्पृही कोई नहीं आरम्भ जिसके किसीकूं नमस्कार न करनी न लेनी न किसी की निन्दा स्तुति करनी समर्थ हुआ मिथ्या जानकर कर्मों का त्याग करदेना सर्पवत् बहुत पुरुषों से डरता रहै नरकवत् सन्मानसे डरता रहै मुरदेवत् स्त्रियों से डरता रहै किसी स्त्रीसे बात न करै पहली देखीहुईकूं स्मरण न करे स्त्रियों की कथा न कहै न सुनै काष्ठकी और लिखीहुई कूं भी न देखे उसकूं देवता ब्राह्मण कहते हैं तात्पर्य जीवन्मुक्त कहते हैं। ऐसे ऐसे और भी वाक्य हैं—हे युधिष्ठिर! मुक्तिमें जाति कारण नहीं शम दमादि गुण कारण हैं ये शम दमादि गुण जो चाण्डालके भी होंगे तो देवता उसकूं ब्राह्मण कहते हैं; जैसे स्वप्नमें प्रपंचप्रतीतहोता है ऐसे जाग्रत प्रपञ्च का निश्चय करे जैसे बाजीगरके पदार्थमें वासना नहीं होती ऐसे इन पदार्थों कूं जानकर वासना न कर अपने कूं असंग जानने से और संसारकी मिथ्याभाव निश्चय करने से शरीर कूं क्षणभंगुर जाननेसे वासना का उदय नहीं होता जिसका निर्वासन मन है उसकूं कर्म और कर्मके फल स्वर्गादि समाधान करना मनका जप करना आदि कुछ अपेक्षा नहीं आत्मानन्दसें

पृथक् सब इन्द्रजालवत् हैं जब ऐसा निश्चय हुआ फिर मन की वासना कहां जावे जन्म जरा व्याधि मृत्युमें दुःखही दुःख हैं फिर भी कुछ एक वार नहीं बारम्बार दुःख उनका अनुसंधान करते हुए वासना का उदय नहीं होता कुसंगके त्यागनेसे भी वासना का उदय नहीं होता ज्ञानीने किसीका संग न करना यों हीं उनका मुक्तपदहै क्योंकि संगसे अशेष दोष होतेहैं योगारूढ़ भी कुसंग करनेसे पतित होजाताहै थोड़ी सिद्धिवाला जो कुसंग से पतित होजावे तो इसमें क्या कहना है श्रीमद्भागवत में लिखाहै स्त्रीके संगी जो पुरुष हैं मुक्तिकी इच्छावाला उनका संग त्याग दे इन्द्रियों कूं शब्दादि विषयों में प्रवृत्तन करे विचरे तो अकेला विचरे यदि एकान्त में बैठकर चित्तकूं अनन्त भगवान् में जोड़े जो सर्वथा संग त्यागा न जावे तो साधुवों का संग करे समस्त बासना का त्याग कर देना चाहिये जो सब न त्यागी जावें तो मुक्तिकी बासना रक्खे स्त्रियोंका और स्त्री संगी पुरुषों का संग विद्वान् दूरसेही त्याग दे एकान्त में बैठकर आलस्य कूं त्याग करके स्वरूप का चिन्तवनकर स्त्रीका संग साक्षात् ऐसा अनर्थ नहीं करता जैसे स्त्रीके संगी का संग अनर्थ करता है दृष्टान्त यो है ज्येष्ठके महीनेमें दिनभर धूपमें चलाजावो वा खड़ारहो परन्तु मरता नहीं उस धूप करके तपाहुआ जो रेत उसमें बैठे रहनेसे निश्चय होता है कि मरजावे इसी

प्रकार सब पदार्थों की सन्निधि ऐसा अनर्थ नहीं करती जैसा भोगी का संग अनर्थ करता है महज्जनों का संग मुक्तिका हेतुहै कामियों का संग नरक का हेतु है ऐसे ऐसे साधन करके शुक्र जीव अपरोक्ष ज्ञान द्वारा निश्चय मुक्त हो जाता है ॥

दश आदमी नदी उतरे, पार जाकर संख्या करी कि कोई हममें डूबा तो नहीं जिसने संख्या करी उसने आप- कूं न गिना फिर यो निश्चय करलिया कि हम दश थे एक डूबगया व आपको भूलकर रोने लगा उस समय कोई और पुरुष वहां आगया उसने बूझा कि तुम क्यों रोते हो कहा कि हम दश पारसे उतरे थे अब नव हैं एक नदीमें डूब गया उसने जो अपने मनमें संख्या करी तो दश प्रत्यक्ष हैं उसन कहा तुम शोक मतकरो दशवां है यो वाक्य सुनकर उसको निश्चय हुआ कि दशवां डूबा- नहीं कहीं इसने देखाहै अपने आपकूं दशवां निश्चय नहीं किया इसकूं तो परोक्ष ज्ञान कहते हैं फिर उसने कहा कि तू मेरे सामने संख्या कर तब फिर उसने वैसेही आपसे पृथक नवकूं गिना आपकूं न गिना उसने कहा दशवां तू है तब उसने जाना कि निःसंदेह दशवां मैं हूं इसकूं अ- परोक्ष ज्ञान कहते हैं ऐसेही जिसने गुरु शास्त्रसे सुनकर यो निश्चय कर रक्खाहै कि कोई ब्रह्म है आपकूं निश्चय नहीं किया कि मैं ब्रह्महूं इसकूं तो परोक्षज्ञान कहते हैं यो

परोक्षज्ञान गुरू शास्त्र पूर्वक जिसकूं है सो ज्ञान बुद्धि-पूर्वक उसके किये हुए समस्त पापोंकूं अग्निवत् भस्म करदेताहै जब यो निश्चय हुआ कि मैंही ब्रह्म हूं इसकूं अपरोक्षज्ञान कहते हैं यो अपरोक्ष ज्ञान गुरु शास्त्र पूर्वक जिसकूं है सो ज्ञानमूलाज्ञान सहित समस्त संसारकूं दूर करदेताहै अर्थात् उसका जन्म नहीं होता वो निरतिशयानन्द कूं प्राप्त होताहै इस प्रकार परमात्मा का स्वरूप चिन्तवन करनेसे तृप्ति तो नहीं होती परन्तु ग्रन्थके विस्तारके भयसें अलम् परिपूर्णम् परमेश्वरकूं बारम्बार नमस्कार है कैसे वे परमेश्वर हैं जिन्होंने गोपियों के वस्त्रहरेहैं ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उनमें प्रथम दासोऽहम् यो मेरी बुद्धि थी सो महाराज ने अपने स्वभावके अनुसार मेरा भेदाकार हरिलिया अब सोऽहम् यो शेषबुद्धि होगई बारम्बार महाराजकूं इस हेतु से नमस्कार करताहूं कि मुझकूं ऐसा निश्चय होताहै व्यतीत जन्मोंमें महाराज कूं कभी नमस्कार नहीं किया क्योंकि जो ये जन्म हुआ और इस जन्म में जो नमस्कार किया तो आगेकूं जन्म नहीं होवेगा स्थूलादि शरीरोंके अभाव होने से नमस्कार कौन करैगा इसलिये पिछिले अपराधके क्षमाके लिये और आगेकूं नमस्कार न करना इस कृतघ्नता महादोष दूर होनेके लिये इसी जन्ममें बारम्बार नमस्कार करताहूं श्रीकृष्णच-

न्द्राय नमोनमः ३ जिसकी देवता में परमभक्ति और जैसी देवता में वैसेही गुरु में है उस आत्माकूं कहे हुए ये अर्थ प्रकाश होंगे अन्यकूं नहीं होंगे यो श्रुतिका अर्थहै श्रीमत्परमहंस परिव्राज स्वामी मलूकगिरि जी महाराज उनके चरण कमलों का पूजनेवाला अनुचर शिष्य आनन्दगिरि नामने यह ग्रन्थ आनन्दामृतवर्षिणी मुन्शी बंशीधरजी जिनके किञ्चित गुण प्रथम अध्याय में लिखे हैं उनकूं सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्व जानने के लिये उनका श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रार्थना से अति सुगम अति पवित्र अतिगुप्त सब विद्या धर्मोंमें श्रेष्ठ जो इसमें ब्रह्मतत्त्व सो सुखपूर्वक जानाजावे प्रत्यक्ष फलहै जिसमें सो आज द्वितीय ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वितीया रविवार संवत् उन्नीस सौ पन्द्रह १९१५ में विनिर्मित करके समाप्त किया पढ़ने सुनने वालोंकूं शान्तिहो शुभहो । हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत् । श्रीकृष्णचन्द्राय नमोनमः ।

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इयमानन्दाऽमृतवर्षिणी समाप्ता ।

अथ प्रश्नोत्तरीप्रारम्भः ।

अपारसंसारसमुद्रमध्येनिमज्जतोमेशरणांकिमस्ति ॥
गुरोकृपालोकृपयावदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥ १ ॥
बद्धोहिकोयोविषयानुरागः कोवाविमुक्तोविषयेविरक्तः ॥ कोवास्तिघोरोनरकःस्वदेहस्तृष्णाक्षयःस्वर्गपदंकिमस्ति ॥ २ ॥
संसारहृत्कस्तुनिजात्मबोधः कोमोक्षहेतुः प्रथितः स एव ॥
द्वारंकिमेकंनरकस्यनारीकास्वर्गदाप्राणभृतामहिंसा ॥ ३ ॥
शेतेसुखंकस्तुसमाधिनिष्ठो जागर्त्तिकोवासदसद्विवेकी ॥
केशत्रवःसन्तिनिजेंद्रियाणिकान्येवमित्राणिजितानितानि४॥
कोवादरिद्रोहिविशालतृष्णःश्रीमांश्चकोयस्यसमस्ततोषः ॥
जीवन्मृतः कस्तुनिरुद्यमो यः कावामृतास्यात्सुखदादुराशा ॥ ५ ॥ पाशोहिकोयोममताभिधानंसंमोहयत्येवसुरेवकास्त्री॥
कोवामहांधोमदनातुरोयोमृत्युश्चकोवाऽपयशः स्वकीयम्॥६॥
कोवागुरुर्योहिहितोपदेष्टाशिष्यस्तुकोयोगुरुभक्तएव ॥ को दीर्घरोगोभवएवसाधोकिमौषधंतस्यविचारएव ॥७॥ किंभूषणाद्भूषणमस्तिशीलंतीर्थंपरंकिंस्वमनोविशुद्धम् ॥ किमत्रहेयंकनकञ्चकान्तासेव्यंसदाकिंगुरुवेदवाक्यम् ॥ ८ ॥ केहेतवो ब्रह्मगतेस्तुसन्तिसत्सङ्गतिर्दानविचारतोषाः ॥ केसन्ति सन्तोऽखिलवीतरागाअपास्तमोहाःशिवतत्त्वनिष्ठाः ॥ ९ ॥
कोवाज्वरःप्राणभृतांहिचिन्तामूर्खोऽस्तिकोयस्तुविवेकहीनः॥
कार्याप्रियाकाशिवविष्णुभक्तिः किंजीवनंदोषविवर्जितंयत् ॥ १० ॥ विद्याहिकाब्रह्मगतिप्रदायाबोधोऽस्तिकोयस्तु वै-

मुक्तिहेतुः ॥ कोलाभआत्मावगमोहियोवैजितंजगत्केनम-
नोहियेन ॥ ११ ॥ शूरान्महाशूरतरोऽस्तिकोवामनोजबाणै
र्व्यथितोनयस्तु ॥ प्राज्ञोऽतिधीरश्चसमोऽस्तिकोवाप्राप्तोन
मोहंललनाकटाक्षैः ॥ १२ ॥ विषाद्विषंकिंविषयाःसमस्ता-
दुःखीसदाकोविपयानुरागी ॥ धन्योऽस्तिकोयस्तुपरोपका-
रीकःपूजनीयोननुतत्त्वनिष्ठः ॥ १३ ॥ सर्वास्ववस्थास्वपिकिं
नकार्यंकिंवाविधेयंविदुषाप्रयत्नात् ॥ स्नेहंचपापंपठनं-
चधर्मःससारमूलंहिकिमस्त्यविद्या ॥ १४ ॥ विज्ञान्महाविज्ञ-
तमोऽस्तिकोवानार्यापिशाच्यानचवंचितोयः ॥ काशृं-
खलाप्राणभृताश्चनारीदिव्यंव्रतंकिंश्चनिरस्तदैन्यम् १५ ज्ञा-
तुंनशक्यंहिकिमस्तिशैवैर्योषिन्मनोयच्चरितंतदीयम् ॥ का
दुस्त्यजासर्वजनैर्दुराशाविद्याविहीनःपशुरस्तिको वा ॥१६॥
वासोनसंगः सहकैर्विधेयोमूर्खैश्चपापैश्चखलैश्चनीचैः ॥
मुमुक्षुणाकिंत्वरितंविधेयंसत्संगतिर्निर्ममतेषुभक्तिः ॥ १७ ॥
लघुत्वमूलंचकिमर्थितैवगुरुत्वबीजंवदयाचनंकिम् ॥ जा-
तोस्तिकोयस्यपुनर्नजन्मकोवामृतोयस्यपुनर्नमृत्युः ॥१८॥
मूकस्तुकोवाबधिरश्चकोवा युक्तंनवक्तुंसमयेसमर्थः ॥ तथ्यं
सुपथ्यंनशृणोतिवाक्यंविश्वासपात्रंनकिमस्तिनारी ॥ १९ ॥
तत्त्वंकिमेकंशिवमद्वितीयंकिमुत्तमंसच्चरितंवदन्ति ॥ किंक-
र्मकृत्वानहिशोचनीयंकामारिकंसारिसमर्चनाख्यम् ॥ २० ॥
शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्तिकोवाकामःसकोपानृतलोभतृष्णः ॥
नपूर्यतेकोविषयैःसएवकिंदुःखमूलंममताभिधानम् ॥ २१ ॥
किंमण्डनंसाक्षरतामुखस्यसत्यंचकिंभूतहितंमदेव ॥ त्याज्यं

सुखंकिंस्वियमेवसम्यग्देयंपरंकिंत्वभयंसदैव॥२२॥कस्यास्ति नाशेमनसोहिमोक्षःक्कसर्वथानास्तिभयंविमुक्तौ ॥ शल्यंपरं किं निजमूर्खतैवकेकेह्युपास्यागुरवश्ववृद्धाः ॥२३॥ उपस्थिते प्राणहरेकृतांतेकिमाशुकार्यंसुधियाप्रयत्नात् ॥ वाक्कायचित्तैःसुखदंयमघ्नंमुरारिपादाम्बुजमेवचिंत्यम् ॥२४॥ केदस्यवः सन्तिकुवासनाख्याःकःशोभतेयःसदसिप्रविद्यः ॥ मातेवकायासुखदासुविद्याकिमेधतेदानवशात्सुविद्या ॥ २५ ॥ कुतोहि भीतिः सततंविधेयालोकापवादाद्भवकाननाच्च ॥ कोवास्ति बंधुःपितरौचकौवाविपत्सहायौपरिपालकौयौ ॥२६॥ बुद्ध्वा नबोद्धुंपरिशिष्यतेकिंशिवंप्रशांतंसुखबोधरूपम् ॥ ज्ञातेतुकस्मिन्विदितंजगत्स्यात्सर्वात्मकेब्रह्मणिपूर्णरूपे॥२७॥ किंदुर्लभंसद्गुरुरस्तिलोकेसत्संगतिर्ब्रह्मविचारणंच ॥ त्यागोहि सर्वस्यशिवात्मबोधःकिंदुर्जयंसर्वजनैर्मनोजः ॥ २८ ॥ पशोः पशुः कोनकरोतिधर्मंप्राधीतशास्त्रोपिनचात्मबोधः ॥ किंतद्विषंभातिसुधोपमंस्त्रीकेशत्रवोमित्रवदात्मजाद्याः ॥२९॥ विद्युच्चलंकिंधनयौवनायुर्दानंपरंकिंचसुपात्रदत्तम् ॥ कण्ठंगतैरप्यसुभिर्नकार्य्यंकिंकिंविधेयंमलिनंशिवार्चा ॥३०॥ किंकर्मयत्प्रीतिकरंमुरारेःक्वास्थानकार्य्यासततंभवाब्धौ ॥ अहर्निशंकिंपरिचिंतनीयंसंसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् ॥३१॥ कंठंगतावाश्रवणंगतावाप्रश्नोत्तराख्यामणिरत्नमाला ॥ तनेतुमोदंविदुषांसुरम्यारमेशगौरीशकथेवसद्यः ॥ ३२ ॥

इति प्रश्नोत्तरी समाप्ता ॥

पंचदशी—श्लोकाः ।

ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यैमुक्तेश्चसिद्धये ॥ बहुकृत्यंपुरा-ण्याभूत्तत्सर्वमधुनाकृतम्॥४०॥ तदेतत्कृतकृत्यात्वंप्रतियोग-पुरस्सरम्॥अनुसंदधदेवायमेवंतृप्यतिनित्यशः॥४१॥ दुःखि-नोऽज्ञास्समरन्तुकामंपुत्राद्यपेक्षया॥ परमानन्दपूर्णोऽहंसंसरा-मिकिमिच्छया॥४२॥अनुतिष्ठन्तिकर्माणिपरलोकार्थियासवः। सर्वलोकात्मकःकस्मादनुतिष्ठामिकिंकथम् ॥ ४३ ॥ वाचय-न्त्वथशास्त्राणिवेदानध्यापयन्तुवा ॥ येत्राधिकारिणोमेतुना धिकारोक्रियत्वतः ॥ ४४ ॥ निद्राभिक्षेस्नानशौचेनेच्छामि-नकरोमिच ॥ द्रष्टारश्चेत्कल्पयंतिकिंमेस्यादन्यकल्पनात्॥ ॥ ४५ ॥ गुंजापुंजादिदह्येतनान्यारोपितवह्निना ॥ नान्यारो पितसंसारधर्म्मानेवमहंभजे ॥ ४६ ॥ शृण्वंत्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्कस्माच्छृणोम्यहम् ॥ मन्यन्तांसंशयापन्नानमन्येऽहम-संशयः॥४७॥विपर्यस्तोनिदिध्यासेतर्किंध्यानमविपर्यये॥ दे-हात्मत्वविपर्यासंनकदाचिद्भजाम्यहम्॥४८॥अहंमनुष्यइत्या दिव्यवहारोविनाप्यमुम्॥विपर्यासंचिराभ्यस्तवासनातोऽवक-ल्पते॥४९॥प्रारब्धकर्म्मणिक्षीणेव्यवहारोनिवर्त्तते॥ कर्म्माक्ष-येत्वसौनैवशाम्येद्ध्यानसहस्रतः॥५०॥विरलत्वंव्यवहतेरिष्टंचे-द्ध्यानमस्तुते ॥ अबाधिकांव्यवहृतिंपश्यन्ध्यायाम्यहंकुतः ॥५१॥विक्षेपोनास्तियस्मान्मेनसमाधिस्ततोमम॥विक्षेपोवा-समाधिर्वामनसःस्याद्विकारिणः॥५२॥ नित्यात्मभवरूपस्य-

कोऽमेवानुभवः पृथक् ॥ कृतंकृत्यंप्रापणीयंप्राप्तमित्येवनिश्चयः ॥५३॥व्यवहारोलौकिकोवाशास्त्रीयोवान्यथापिवा॥ममकर्तुरलेपस्ययथारब्धंप्रवर्त्ततांम्॥५४॥अथवाकृतकृत्योऽपिलोकानुग्रहकाम्यया॥ शास्त्रीयेणैवमार्गेणवर्त्तेऽहंकाममक्षितः॥५५॥ देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौवर्त्ततांवपुः ॥ तारंजपतुवाक्तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तकम्॥५६॥ विष्णुंध्ययातुधीर्यद्वाब्रह्मानन्देविलीयताम् ॥ साक्ष्यहं किंचिदप्यत्रनकुर्वेनापिकारये५७कृतकृत्यतयातृप्तः प्राप्तप्राप्यतयापुनः॥ तृप्यन्नेवंस्वमनसामन्यतेसौनिरन्तरम्५८ धन्योऽहंधन्योऽहंनित्यंस्वात्मानमंजसावेद्मि ॥ धन्योऽहंधन्योऽहंब्रह्मानन्दोविभातिमेस्पष्टम्॥५९॥ धन्योऽहं धन्योऽहंदुःखंसांसारिकंनवीक्षसे चाऽद्य ॥ धन्योऽहंधन्योऽहं स्वस्याज्ञानंपलायितंक्वापि ॥६०॥ धन्योऽहंधन्योऽहंकर्त्तव्यंमेनविद्यतेकिंचित् ॥ धन्योऽहंधन्योऽहंप्राप्तव्यंसर्वमद्यसम्पन्नम् ॥६१॥ न्योऽहंधन्योऽहंतृप्तेर्मेकोपमाभवेल्लोके ॥ धन्योऽहं धन्योऽहंधन्योधन्यःपुनःपुनर्धन्यः॥६२॥अहोपुण्यमहोपुण्यं फलितं फलितंदृढम् ॥ अस्यपुण्यस्यसम्पत्तेरहोवयमहोवयम् ॥६३॥ अहोशास्त्रमहोशास्त्रमहोगुरुरहोगुरुः ॥ अहोज्ञानमहोज्ञानमहोसुख महोसुखम् ॥ ६४ ॥

इति ॥

विक्रय्यपुस्तकें (वेदान्तग्रंथ भाषा)

नाम.	की०रु०आ०
आत्मपुराण—भाषामें दशोपनिषद्‌के भावार्थ चिद्‌घनानंद स्वामिकृत	१२—०
योगवासिष्ठ—बडा भाषा छः प्रकरणोंमें श्रीगुरुवसिष्ठजी और श्रीरामचंद्रजीका संवादोक्त अपूर्व ग्रंथहै खुलापन्ना	९—०
" " बडा संपूर्ण ६ प्रकरण २ जिल्दोंमें	९—०
स्वरूपानुसंधान—वेदान्तियोंको अवश्य लेनेयोग्य	२—०
योगवासिष्ठ—भाषामें वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण बडा अक्षर ग्लेज कागज	०—१२
" तथा रफ् कागज	०—१०
योगवासिष्ठसार—भाषा	२—०
पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश—(कामलीवालेबाबाजीकृत)	२—८
अभिलाखसागर—भाषामें स्वामी अभिलाखदासउदासीकृत	१—८
अध्यात्मप्रकाश—श्रीशुकदेवजी प्रणीत कवित्त दोहे सोरठे छंद चौपाई इत्यादिमें वेदान्तका अपूर्व ग्रंथ है	०—३
जीवब्रह्मसागर—भाषा	०—३
प्रबोधचंद्रोदय नाटक—भाषा—गुलाबसिंहकृत (वेदान्त)	१—०
चन्द्रावली ज्ञानोपमहासिन्धु—इस ग्रंथमें वेद वेदा-	

इति

आनन्दामृतवर्षिणी

समाप्ता।